235 क लेख – भावी भारत का संविधान, एक समीक्षा

235 ख लेख स्वराज्य क्यो, **क्या ? और कैसे**

भावी भारत का संविधान, एक समीक्षा

मैने लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व भावी भारत का संविधान शीर्षक एक किताब लिखी थी। यह किताब उस समय प्रचलित भी हुई। किन्तु वह पुस्तक कभी ज्ञान तत्व मे नहीं आने से पाठकों तक इक्का दुक्का ही पहुंच सकी। पुस्तक की एक एक लाइन आज भी प्रासंगित है। भले ही आर्थिक आकलन अब बदल गये हों किन्तु भावर्थ वही है। पौराणीक जी के कई बार कहने पर सोचा गया कि वह पुस्तक ज्ञान तत्व मे प्रकाषित किया जाय। चूंकि पुस्तक पंद्रह वर्ष पूर्व की हैं अतः उस संदर्भ को जोडकर पढना आवष्यक हैं। आपसे निवेदन है कि आप पंद्रह वर्ष पूर्व की स्थिति के अनुसार प्रतिक्रिया तथा सुझाव देने की कृपा करें।

प्रकाशकीय

कल्पनाषीलता मनुष्य के अदभुत गुणों मे एक है। सभी महापुरूषो ने मानव जीवन को सुखी बनाने के लिय एक जीवन–षैली, एक जीवन दर्षन की कल्पना की है। तदनुसार वे अपना सारा जीवन उसी कल्पना को साकार करने की रचना मे लगाते रहे है। भाई श्री बजरंग लाल भी जमीन से जुडे एक ऐसे ही समाज निष्ठ है, जिन्होने अपराध मुक्त समाज निर्माण की कल्पना की है तथा उसके लिय स्थानीय स्तर पर प्रयासरत भी है।

इस पुस्तक का उद्भव उनके राजनीतिक अनुभवो से संबंधित हैं राज्य की आचार संहिता (संविधान) कैसी हो ? इस बारे मे खुला चिंतन करने के लिये उन्होने ने न केवल राष्ट्रव्यापी यात्राएँ की, वरन् जगह जगह विधिवेत्ताओ, न्यायधीषो एव समाजषास्त्रियो के साथ खुली चर्चाए भी की। वे मानते है कि वर्तमान व्यवस्था, व्यवस्था रह ही नही गयी है बल्कि वह एक ऐसी कुव्यवस्था है जो सुव्यवस्था के स्थान पर स्वय षोषण एवमं अत्याचार का पर्याय बनकर रह गयी है। इसे बदलने के लिय संविधान मे आवष्यक संषोधन होने चाहिये।

संविधान संषोधन के छः बिन्दु सर्वप्रथम रेखांकित किये गये है 1 स्वराज्य 2 मौलिक अधिकारो की रक्षा की गारन्टी 3 आर्थिक असमानता मे कमी 4 श्रम मूल्य वृद्धि 5 समान नागरिक संहिता। संषोधित करेगा कौन? 'भारत' या 'इण्डिया' के नागरिक, विचारक, विधिवेत्ता, सांसद? देष के दो नाम रहे ही क्यो? यह सोचने का समय आ गया है । आवष्यकता है

1 समाज की इकाई की व्याख्या और उसके आयामो की पहचान।
2 परिवार इकाई की पांव से षिखा तक की अन्तर व्यवस्था का प्रस्तुतिकरण।
3 व्यवस्था मे अपराधियो की दखलंदाजी समाप्त करने के कारगर उपाय।
4 संविधान के रखवाले के रूप मे आचार्यो का महत्व।
5 निर्वाचित जनप्रतिनिधियों पर नियंत्रण के कारगर उपाय।

व्यवस्था परिवर्तन क्यों ?

सृष्टि के प्रारंभ से ही दो प्रकार की प्रवृतियॉ अस्तित्व मे है 1 दैवी प्रवृति 2 आसुरी प्रवृति। इन दोनो के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहता है। दैवी प्रवृति के लोगों की संख्या बहुत अधिक होती है तथा आसुरी लोगो की बहुत कम। किन्तु आसुरी प्रवृति के लोग दैवी प्रवृति वालो की अपेक्षा बहुत षक्तिषाली होते है। दैवी प्रवृति के व्यक्तियो के समूह को समाज कहते है तथा आसुरी प्रवृति वालो को समाज विरोधी। समाज और समाज विरोधी तत्वो के बीच निरंतर संघर्ष होता रहा है । समाज विरोधी तत्वो पर समाज के नियंत्रण को व्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है । व्यवस्था उस प्रक्रिया को कहते है जो समाज द्वारा समाज विराधी तत्वों पर नियंत्रण तथा समाज के सुचारू रूप से संचालन के लिय बनाई जाती है।

व्यवस्था सम्पूर्ण इकाई द्वारा सम्पूर्ण इकाई के बीच से सम्पूर्ण इकाई की सुरक्षा और सुचारू संचालन के लिये होती है । किन्तु किसी भी व्यवस्था का क्रियान्वयन सम्पूर्ण इकाई नही करती बल्कि सम्पूर्ण इकाई द्वारा नियुक्त एक छोटा सा समूह करता है । समाज की व्यवस्था करने वाले वर्ग को सरकार कहते है। समाज शब्द पूरे विष्व का प्रतिनिधित्व करता है । अतः सरकार भी पूरे विष्व की एक ही होनी चाहिये। किन्तु अब तक विष्व राष्टो से उपर नही उठ सका है अतः व्यवस्था भी राष्टो की ही है और सरकार भी। भारत भी ऐसा ही एक राष्ट है जिसकी एक अपनी स्वतंत्र व्यवस्था भी है और सरकार भी।

सन् सैतालीस से भारत की अपनी व्यवस्था है। स्वतंत्रता के समय सोचा भी गया था तथा घोषणा भी हुई थी कि भारत मे सुराज्य होगा। अपराध नियंत्रण होगा। भ्रष्टाचार तथा आर्थिक असमानता नही होगी। श्रम का सम्मान होगा तथा उसका उचित मूल्य मिलेगा। कानून का पालन करने वाले निर्भय होगे। बेरोजगारी नही होगी तथा भारत इतना आत्म निर्भर होगा कि विदेषी कर्ज का कोई प्रष्न ही नही रहेगा। जाति और धर्म का भेद भाव नही किया जायगा। ये तथा ऐसी ही अनेक घोषणाए की गई थी। किन्तु हम पचास वर्षो के बाद समीक्षा करते है तो पाते है कि हम हर मामले मे पिछडते चले गये। उत्पादन तीव्र गति से बढा किन्तु सुरक्षा, भ्रष्टाचार, आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, विदेषी कर्ज, धार्मिक जातीय टकराव आदि पर कोई रोक नही लगी बल्कि सच्चाई यह है कि प्रत्येक मामले मे हम लगातार पिछडते गये। गांधी जी ने हमे स्वराज्य का नारा दिया था जिसका अर्थ होता है ''प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता।'' गांधी जी तथा उनके आश्रम के लोग निरंतर इसी विचार के पोषक रहे। किन्तु गांधी हत्या के बाद कांग्रेंस तथा आश्रम की सोच भिन्न भिन्न हो गई। आश्रम की शक्ति कमजोर हुई तथा नेहरू पटेल के नेतृत्व मे कांग्रेस ने स्वराज्य के स्थान पर सुराज्य को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। कांग्रेस के लोगो की नीयत विष्वास योग्य थी। अतः आम नागरिको ने सुराज्य की प्रतीक्षा मे स्वराज्य की नीति को छोडना स्वीकार कर लिया। सुराज्य व्यवस्था के दोष निष्चित थे जो धीरे धीरे व्यवस्था के अंग बनते चले गये और धीरे धीरे हम व्यवस्था से अव्यवस्था की ओर तथा अब अव्यवस्था से कुव्यवस्था की ओर बढते जा रहे है। बिल्कुल स्पष्ट हो चुका है कि व्यवस्था पूरी तरह समाप्त हो चुकी है और यदि व्यवस्था नाम की कोई चीज है भी तो वह समाज विरोधियो की व्यवस्था समाज के लिय चल रही है। निष्चित रूप से यह एक चिन्तनीय समय है। भारत के अनेक साधु पुरूष इस व्यवस्था की बीमारियो को ठीक करने मे दिन रात लगे हुए है किन्तु व्यवस्था लगातार विपरीत दिषा मे दौड रही है। अनेक विद्वान निराष होकर भगवतभजन मे लग गये है अथवा अनेक अब भी व्यवस्था मे सुधार का प्रयास कर रहे है, किन्तु न तो वे सफल है नही सफलता की कोई उम्मीद षेष है

मेरे विचार मे व्यवस्था के प्रत्येक अंग एक दूसरे से इस तरह जुडे है कि किसी एक के सुधार से कोई परिणाम दिखने वाला नही। अतः व्यवस्था मे आमूल चूल परिवर्तन करना होगा। वर्तमान व्यवस्था के स्थान पर नई व्यवस्था का एक प्रारूप बनाकर तदनुसार व्यवस्था परिवर्तन ही हमारा उद्देष्य है और मेरी यह इच्छा है कि नई व्यवस्था का प्रारूप बनाने तथा व्यवस्था परिवर्तन मे समाज के जागरूक साधु पुरूषो की पूरी सहभागिता हो।

संविधान संषोधन क्यो?

हम इस निष्कर्ष तक पहुंच चुके है कि वर्तमान समस्याओ के समाधान के लिये वर्तमान व्यवस्था का आमूल चूल बदलाव ही एकमात्र मार्ग है। अब हमे यह विचार करना है कि व्यवस्था मे ऐसी गडबडी क्यो आई? नई व्यवस्था का स्वरूप क्या हो? तथा उसका मार्ग क्या हो ?

व्यवस्था समाज की होती है और उसका कार्यान्वयन सरकार का। सरकार को समाज की नीतियो के आधारो पर काम करना होता है । किन्तु समाज का कोई स्थिर स्वरूप और संगठन न होने से यह संभव नही होता कि समाज सरकार के दैनिक कार्यो पर नियंत्रण या मार्ग दर्षन कर सके। अतः समाज एक संविधान बनाकर उस संविधान के अन्तर्गत सरकार को काम करने के अधिकर दे देता है। संविधान एक ऐसा दस्तावेज होता है जो सरकार की अन्तिम सीमाएं तय करता है और मार्ग दर्षन प्रदान करता है । सन सैतालिस के पूर्व भारत गुलाम था अतः उसका अपना कोई संविधान नही था। किन्तु स्वतंत्रता के बाद भारत का अपना संविधान बना जो तीन वर्षो तक बनते हुए सन पचास मे लागू हुआ।

संविधान की प्रामाणिकता की कसौटी इस बात पर निर्भर करती है कि वह कितना संतुलित है अर्थात संविधान न इतना कठोर हो कि षासन को व्यवस्था करने मे ही कठिनाई हो तथा न इतना लचीला हो कि षासन ही उच्श्रृखल हो जाय। शासन कमजोर होगा तो अव्यवस्था हो जायगी और उच्श्रृखल होगा तो कुव्यवस्था । अपेक्षा की गई थी कि भारतीय संविधान इतना संतुलित होगा कि समाज विरोधी तत्वो पर पूरी तरह नियंत्रण होगा किन्तु समाज की स्वतंत्रता मे कोई बाधा उत्पन्न नही होगी। किन्तु परिणाम ठीक विपरीत हुए अर्थात समाज विरोधी तत्व मजबूत होते गये और समाज की स्वतंत्रता मे लगातार कटौती होती चली गई। हम यह निष्चित रूप से कह सकते है कि संविधान अपने उद्देष्यो के विपरीत परिणाम उत्पन्न करता रहा।

आम तौर पर यह कहा जाता है कि भारत मे फैली अव्यवस्था के लिये चरित्र पतन उत्तरदायी है, न कि संविधान । यदि व्यक्ति ठीक हो तथा संविधान का ठीक से पालन करे तो परिणाम विपरीत हो ही नही सकते। मेरे विचार मे ये बचकानी बातें है। जब भारत का संविधान बना तब उसके बनाने वालों और पालन करने वालो का चरित्र आज से कई गुना ऊॅचा था। फिर भी यह दुर्दषा यदि हुई तो कही न कहीं संविधान में कमजोरी रही। पागलखाना का कोई डाक्टर यही तर्क दे कि यदि पागल मेरी बात को ठीक से समझेगा तथा उस अनुसार काम करेगा तो वह ठीक हो जायगा। ऐसा तर्क मिथ्या होगा क्योकि पागलखाने का डाक्टर समझने वाले के लिये नियुक्त नही है बल्कि न समझने वालो के लिये है। संविधान का उद्देष्य चरित्र पतन को रोकना है और यदि संविधान चरित्र पतन को रोकने मे असफल है तो यह उसकी स्वय की असफलता है चरित्र की नहीं। दुर्भाग्य है कि हमारे अनेक सामाजिक कार्यकर्ता भी राजनेताओ के इस प्रचार मे हॉ करते है कि संविधान दोषी नही है बल्कि लोग दोषी है । यह प्रष्न भी स्वाभाविक ही है कि यदि चरित्र के उत्थान पतन मे संविधान की कोई भूमिका नही है तो फिर उसकी आवष्यकता तथा उपयोगिता ही क्या है? क्यो न इसे छोटा करके इसकी सक्रियता तथा हस्तक्षेप को घटा दिया जाय ? मै तो इस निष्कर्ष पर पहुचा हूॅ कि भारत मे व्याप्त अधिकांष समस्याए या तो भारतीय संविधान की कमजोरियो के कारण है या भारतीय संविधान की सक्रियता के वाईप्रोडक्ट है।

अब हम विचार करेगें कि भारतीय संविधान मे क्या क्या कमजोरिया है–

1 जनकल्याण को अपराध नियंत्रण से अधिक प्राथमिकता

सरकार और संविधान की तुलना किसी गाडी के ब्रेक से की जाती है जो सामान्यकाल मे गाड़ी की चाल से निर्लिप्त रहता है किन्तु आपात्काल मे सक्रिय हो जाता है । भारतीय संविधान की विपरीत भूमिका रही । सामान्य लोगो के जीवन मे तो संविधान और सरकार पग पग पर सक्रिय रही किन्तु अपराध नियंत्रण के मामले मे उसका ब्रेक फेल हो गया। अपराध नियंत्रण सरकार का दायित्व होता है और जनकल्याण के कार्य उसका कर्तव्य । भारतीय संविधान दायित्व और कर्तव्य के फर्क को रेखांकित नही कर सका जिससे जनकल्याण के कार्य तो सरकार के दायित्व बन गये और अपराध नियंत्रण उसके कर्तव्य।

2 बहुत अधिक

किसी भी संविधान की यह विषेषता आवष्यक है कि उसकी भाषा बिल्कुल स्पष्ट हो। यदि किसी संविधान की भाषा द्विअर्थी हो तो यह उस संविधान का दोष माना जायगा। दो चार द्विअर्थी वाक्यो का होना तो स्वाभाविक है किन्तु भारतीय संविधान तो ऐसे interpretations से भरा पडा है। संविधान के अधिकांष अंषो की व्याख्या करते समय संसद एक अर्थ निकालती है तो हाईकोर्ट बदल देता है। हाईकोर्ट के अर्थ सुप्रीम कोर्ट और कई बार तो सुप्रीम कोर्ट के अर्थ भी उसकी पूर्ण पीठ बदल देती है । षंका होती है कि यदि सुप्रीम कोर्ट से उपर भी कोई कोर्ट होता तो षायद अनेक निष्कर्ष बदल दिये गये होते।

3– अस्पष्ट उददेष्य

किसी भी संविधान को देखने पढने से यह स्पष्ट होना चाहिए कि संविधान निर्माता क्या चाहता है। अपने मुख्य उद्देय को मजबूती से रखकर परन्तु के साथ अपवाद जोडने की प्रथा है। भारतीय संविधान की यह कमजोरी रही कि उसमे हर जगह मुख्य वाक्य को परन्तु लिखकर अर्थहीन बना दिया गया। सरकार किसी व्यक्ति के साथ धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, लिंग के आधार पर कोई भेद नही करेगी किन्तु आदिवासी, हरिजन, अल्पसंख्यक, पिछडा वर्ग तथा महिलाओ के लिये विषेष कानून बनाये जा सकते है। इसी तरह हिन्दी भारत की राजभाषा होगी किन्तु संसद जब तक चाहे अंग्रेजी को कायम रख सकती है आदि आदि

4– व्यक्ति इकाई के स्थान पर वर्ग भेद–

प्रजातांत्रिक देषों के संविधान की यह विषेषता रही है कि वे व्यक्ति को इकाई मानते रहे न कि जाति धर्म या लिंग को। होना तो यह चाहिये था कि संविधान भारत के सौ करोड व्यक्तियो का होता तथा परिवार, ग्राम, जिला और प्रान्त व्यवस्था की इकाइयॉ होती। किन्तु भारतीय संविधान धर्मो, जातियो , भाषाओ लिंगों का संघ बन गया। सविधान ने परिवार और ग्राम के लिये तो कुछ सोचा ही नही। भारतीय संविधान मे परिवार शब्द तो है ही नही, ग्प्रम शब्द भी एकाध जगह अवांछित सरीखा आ गया है। इससे सारे अधिकार और दायित्व भी केन्द्रित हो गये तथा व्यवस्था मे परिवार और गांव की भागीदारी ष्षून्य हो गई। साथ ही वर्ग मान्यता के कारण वर्ग विद्वेष भी पैदा हो गया।

5– बहुत बडा–

संविधान की यह विषेषता होती है कि वह सरकार की सीमाएं निष्चित करने तक सीमित रहे। इस हिसाब से संविधान को बहुत छोटा होना चाहिये। किन्तु भारतीय संविधान मे तीन सौ पंचान्नवे धाराऍ है और उन धाराओ मे लम्बे लम्बे किन्तु परन्तु है। यही कारण है कि भारतीय संविधान को वकीलो का स्वर्ग कहा जाता है तथा वह सामान्य जनता की पहुंच और समझ से दूर है।

6– मौलिकता का अभाव–

संविधान किसी भी व्यवस्था की आत्मा माना जाता है । उसे मौलिक तथा दबाव मुक्त परिस्थितियो मे बनना चाहिये। भारतीय संविधान निर्माताओ की मजबूरी थी कि उनके साथ त्यागी तपस्वी और जुझारू व्यक्तियो की टीम तो थी किन्तु विचारको का अभाव था। परिस्थितिवष यह स्वाभाविक भी था क्योकि गुलाम भारत को स्वतंत्रता दिलाने मे मुख्य भूमिका इन्ही सबकी थी। परिणाम हुआ कि भारतीय संविधान मौलिक तथा

भारतीय परिस्थितियो का आवष्यक प्रतिबिम्ब न बनकर दुनिया के अनेक देषो के संविधानो के अंषो की खिचडी मात्र बन गया। उस समय की परिस्थितियो की मजबूरी भी थी कि संविधान निर्माताओ को अंग्रेजी तथा कुछ भारतीय वर्गो से न चाहते हुए भी समझौते करने पडें।

7– व्यावहारिकता का अभाव–

किसी भी संविधान की यह अनिवार्यता होती है कि वह व्यावहारिक हो, आदर्षवादी नही। उस समय के संविधान निर्माता भावना प्रधान तथा उच्च आदर्षवादी थे फिर स्वतंत्रता संधर्ष के समय उन्होने और भी बढ चढ़कर आदर्षवादी घोषणाये कर रखी थी। परिणाम हुआ कि भारतीय संविधान उच्च आदर्षवादी तो बन गया किन्तु उसमें व्यावहारिकता का अभाव रहा।

उपर उल्लेखित तथा आगे वर्णित कारणो के आधार पर हम निष्चित रूप से कह सकते है कि भारत की वर्तामान अव्यवस्था तथा कुव्यवस्था के कारण भारतीय संविधान मे ही विद्यमान है अतः संविधान मे आमूल चूल संषोधन आवष्यक है।

प्रष्न–सविधान और कानून कभी भी सामाजिक परिवर्तन नही कर सकते। आप अनावष्यक रूप से संविधान और कानून के पीछे पडे है।

उत्तर– मै आपकी भावना से सहमत हूॅ कि संविधान और कानून सामाजिक बदलाव नही कर सकते। दुर्भाग्य है कि संविधान निर्माताओ ने इस सच्चाई को नकार दिया तथा भारी भरकम संविधान और तदनुसार कानून बना डाले। परिणाम यह हुआ कि सामाजिक बदलाव तो नही आया, उल्टे संविधान ही विफल हो गया। अब मेरा मत है कि इस सच्चाई को स्वीकार किया जाय और संविधान तथा कानूनो को कम से कम करके लोगो के लिय संविधान का छोटा प्रारूप प्रस्तुत किया जाय। मेरा आप सब पर आरोप है कि आप संविधान के स्वरूप को छोटा करने के प्रयास का अनावष्यक विरोध कर रहे है। क्योकि संविधान तथा कानून से कोई सामाजिक परिवर्तन नही हुआ करता है।

मौलिक अधिकार

समाज मे व्यवस्थाए दो प्रकार की है–

(1) लोकतंत्र

(2) साम्यवाद या तानाषाही

लोकतंत्र मे व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है और साम्यवाद या तानाषाही मे व्यक्ति का कोई अधिकार नही होता । साम्यवाद या तानाषाही मे कानून का षासन नही होता बल्कि षासन का कानून होता है जबकि लोकतंत्र मे कानून का षासन होता है। साम्यवाद मे व्यक्ति के कोई मौलिक अधिकार नही होते जबकि लोकतंत्र मे व्यक्ति के मौलिक अधिकार होते हैं। भारत एक लोकतांत्रिक देष है । यहा के प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकार प्राप्त है।

अधिकार दो प्रकार के होते है–

(1) संवैधानिक

(2) प्राकृतिक या मौलिक

संवैधानिक अधिकार नागरिक को प्राप्त होते है जबकि मूल अधिकार व्यक्ति के होते है। संवैधानिक अधिकार संविधान द्वारा घोषित होते है तथा प्रत्येक राष्ट्र मे भिन्न भिन्न होते है। जबकि मूल अधिकारो का संविधान से कोई संबंध नही होता है और ना ही वे भिन्न भिन्न राष्ट्रो मे भिन्न भिन्न होते है। दुनिया के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से मौलिक अधिकार प्राप्त होते है। यह अलग बात है कि साम्यवादी या तानाषाही देषो मे इन पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध है जबकि वर्तमान लोकतांत्रिक देषो मे इन पर पूर्ण रूप से प्रतिबंध है जबकि वर्तमान लोकतांत्रिक देषो मे आंषिक । अनेक राष्ट्र मूल अधिकारो की भिन्न भिन्न व्याख्या करके इनमे आंषिक फेर बदल करते रहते है।

मूल अधिकार का एक ही अर्थ होता है कि '' व्यक्ति के वे अधिकार जिसमे कोई अन्य किसी भी परिस्थिति मे बिना उसकी सहमति से कोई कटौती न कर सके। ''कोई अन्य शब्द'' मे दुनिया के नागरिको से लेकर सरकार तक षामिल है। ये अधिकार इतने प्राकृतिक और स्वाभाविक होते है कि सम्पूर्ण समाज या सरकार भी उनमे किसी तरह कटौती नही कर सकती। दुनिया के किसी भी संविधान को इन अधिकारो पर अंकुष लगाने का कोई अधिकार नही होता । दुर्भाग्य से वर्तमान प्रजातांत्रिक देषो ने मूल अधिकार की परिभाषा ही बदल दी है । विषेषकर भारत मे तो पूरा अर्थ ही बदला हुआ है। यहॉ मूल अधिकार का अर्थ यह माना जाता है कि ये अधिकार संविधान प्राप्त है, सरकारो द्वारा फेर बदल नही किये जा सकते तथा किसी भी सरकार के बाध्यकारी दायित्व के रूप मे है। यही कारण है कि भारत के संविधान मे यदा कदा परिवर्तन करके मूल अधिकारो मे कमी या वृद्धि का क्रम चलता रहता है। पिछले वर्षो मे ही श्रीमति गांधी के षासन काल मे सम्पति के अधिकार को मूल अधिकार मे से हटा दिया गया था। उस समय तो आपातकाल मे जीवन के मूल अधिकार तक को निलंबित करने का प्रयास हुआ था किन्तु न्यायालय उनके इस प्रयास मे बाधक बना। इस तरह मूल अधिकारो की गलत व्याख्या के कारण भारत मे मूल अधिकारो का अस्तित्व संविधान या संविधान संषोधन के लिये अधिकृत राजनेताओ की दया पर निर्भर हो गया। ये राजनेता भी कोई पृथक से निर्वाचित न होकर सरकार और संसद सदस्य के रूप मे चुने हुए ही होते है। यही लोग लोक अधिकारो का पालन भी कराने वाले होते हे और यही लोग उसकी व्याख्या का भी अधिकार रखते है। यह विडम्बना ही है कि जिन लोगो की दुष्प्रवृति से सुरक्षा के लिये मूल अधिकार व्यक्ति के कवच स्वरूप मे होते है वे लोग उस कवच के स्वरूप निर्धारण का अधिकार रखते है।

वर्तमान समय मे भारतीय संविधान मे मूल अधिकारो का कोई स्वरूप ही नही है। भारत की 99 प्रतिषत आबादी मूल अधिकारो से वंचित है तथा 1 प्रतिषत लोग जिनमे पत्रकार, राजनेता, और अपराधी वर्ग षामिल है, अपने तथा 99 प्रतिषत लोगो के मूल अधिकारो का उपयोग कर रहे है। मूल अधिकार चार ही हो सकते है– 1 जीने का 2 अभिव्यक्ति का 3 स्वनिर्णय का 4 सम्पति का।

1 जीने का – जीने के अधिकार को वर्तमान संविधान भी मूल अधिकार मानता है । इस अधिकार पर संवैधानिक विवााद नही है। सभी प्रजातात्रिक देष आदर्ष मे भी और व्यवहार मे भी इसे मूल अधिकार मानते है।

2 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का – इस अधिकार को भी वर्तमान संविधान मूल अधिकार मानता है। यह अधिकार वर्तमान संविधान की धारा ।। 9।। के (क) मे वर्णित है। इस धारा को परन्तु लगाकर इस तरह सीमित किया गया है कि '' उपरोक्त वाक और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग भारत की प्रभुता अखण्डता राज्य की सुरक्षा विदेषो मे मैत्रि पूर्ण संबंध लोक व्यवस्था षिष्टाचार सदाचार न्यायालय मान हानि तथा अपराध उद्दीपन के संबंध मे राज्य द्वारा बनाई गई विधि अनुसार ही किया जा सकेगा। विचारणीय है कि राज्य की सुरक्षा विदेष संबंध लोक व्यवस्था तक को षामिल करने के बाद अभिव्यक्ति मे कौन सी स्वतंत्रता ऐसी रह जाती है जो मूल अधिकार कही जा सकती है? अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर रोक लगाने के सारे अधिकार राज्य को देने के बाद इसे मूल अधिकार मे षामिल करना सिर्फ खाना पूर्ति मात्र ही है। इस अधिकार से आम नागरिक को लाभ तो नगण्य ही है किन्तु इसके नाम पर पत्रकार जगत को ब्लैक मेल करने तक के असीमित अधिकार प्राप्त हो गये है। अब कोई भी पत्रकार किसी भी व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण तक को सार्वजनिक कर सकता है। इस तरह आम नागरिक की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तो राज्य ने छीन ली और गुप्तता की स्वतंत्रता पत्रकारो ने छीन ली।

3. स्व निर्णय का – प्रजातांत्रिक देषो मे से पष्चिम के देष स्वः निर्णय को आंषिक रूप से मूल अधिकार मानतें है किन्तु भारत मे यह आंषिक रूप से भी मूल अधिकार नही। किसी भी व्यक्ति को अपने विषय मे निर्णय करने का उस सीमा तक अधिकार होना चाहिए कि वह किसी अन्य व्यक्ति की वैसी ही स्वः निर्णय की सीमाओ का उल्लंधन न करे। किन्तु आज भारत के किसी नागरिक को अपनी सीमाओ भोजन, वस्त्र, षिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, विवाह, सन्तानोत्पति आदि के संबंध मे निर्णय करने का उसी सीमा तक अधिकार है जो सीमा राज्य तय करें। यहॉ तक कि व्यक्ति स्वेच्छा से आत्महत्या भी नही कर सकता। एक और तो व्यक्ति के स्व निर्णय को राज्य की इच्छा पर निर्भर करके ष्षून्यकर दिया गया दूसरी ओर संघ बनाने जैसे अधिकार को मूल अधिकार होने के आधार पर इतनी छूट दी गई कि अधिकांष शोषक तत्व संगठन बनाकर लोगो के बचे खुचे स्व निर्णय पर भी भूखे भेडिये के समान टूट पडे। आज चक्का जाम, हडताल, घेराव, प्रदर्षन आदि के माध्यम से धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्रीयता, लिंग, रोजगार राजनीतिक भेद आदि के नाम पर संगठित समूहो ने व्यक्ति के स्वः निर्णय के अधिकार की जो दुर्गति कर रखी है वह भारत भर मे प्रत्यक्ष है।

4. सम्पति का– सम्पति का अधिकार भारत मे मूल अधिकार है ही नही। भारतीय संविधान के प्रारंभिक काल मे यह मूल अधिकार था किन्तु बाद मे राज्य ने यह महसूस किया कि यह मूल अधिकार होना घातक है अतः इसे मूल अधिकार से निकाल दिया गया। पहली बात तो यह है कि मूल अधिकार का अर्थ ही है कि कोई भी किसी स्थिति मे उसकी इच्छा के बिना उस अधिकार मे कोई कटौती नही कर सकता। प्रष्न उठता है कि सम्पति का मूल अधिकार से हटाने का अधिकार सिर्फ उन्हे ही था जिनका यह अधिकार था। किन्तु इस संबंध मे जनमत संग्रह कराने की आवष्यकता नही समझी गई और संसद ने संविधान द्वारा प्राप्त अधिकारो के आधार पर इसे गाजर मूली की तरह उखाड कर फेक दिया।

अब प्रष्न उठता है कि क्या सम्पति को मूल अधिकार होना चाहिये? इस संबंध मे अधिकांष लोगो का मत है कि नही होना चाहिये। इस विषय पर गंभीरता से विचार करने की आवष्यकता है तभी निर्णय करना चाहिये। एक बात बिल्कुल स्पष्ट है कि लगातार बढती आर्थिक असमानता के कारण सम्पति के असीम अधिकारो पर कोई न कोई अंकुष तो होना तर्क संगत प्रतीत होता है किन्तु प्रष्न उठता है कि यह अंकुष किसका हो? यदि यह अंकुष राज्य का होगा तो क्या राज्य की षक्ति निरंकुष नहीं हो जायगी ? राज्य जो स्वयं में एक बुराई है उसे षक्ति देना कितनी बुद्धिमत्ता होगी। धन की षक्ति और राज्य की षक्ति में से राज्य की षक्ति धन की षक्ति से अधिक घातक है। धन की परिभाषा यह है कि श्रम और बुद्धि के संचय का ही परिवर्तित स्वरूप धन है। इसे मनुष्य जब चाहे तब श्रम और बुद्धि में बदल सकता है। इसके संचय करने में किसी अनैतिक आचरण पर तो अंकुष लगाना तर्क संगत हो सकता है किन्तु यदि नैतिक तरीके से कोई व्यक्ति या परिवार अपने श्रम और बुद्धि को धन के रूप में इक्ठ्ठा करे तो राज्य को उसमें हस्तक्षेप क्यों करना चाहिए? यदि राज्य को यह अधिकार दे दिया गया तो राज्य के ऐसे हस्तक्षेप की सीमा क्या होगी ? स्पष्ट है कि सम्पत्ति की स्वतंत्रता में राज्य का हस्तक्षेप बहुत घातक होगा। अत; सम्पत्ति को मूल अधिकार में रखना ही तर्क संगत प्रतीत होता है।

एक बात और है कि यदि इसे मूल अधिकार से निकाल भी दिया गया है जिसे करीब 25 वर्ष हो गये है तो उससे कितनी न्यायपूर्ण अर्थ व्यवस्था स्थापित हुई? पिछले पच्चीस वषों में आर्थिक असमानता पूर्व के वषों की अपेक्षा और अधिक तीब्र गति से बढी है। फिर इसे निकालने का लाभ क्या था ? सिर्फ अपनी शक्ति बढाने तथा आर्थिक रूप से पिछडे हुए लोगों की भावनाओं पर मरहम लगाने की धूर्तता के अतिरिक्त इस कदम का कोई औचित्य नहीं था। यदि वास्तव में हम आर्थिक असमानता पर अंकुष चाहते है तो सम्पत्ति के मूल अधिकार में षामिल होते हुए भी तर्क संगत कर प्रणाली के द्वारा यह संभव है।

उपर वर्णित विचारो से यह स्पष्ट है कि राज्य मूल अधिकारो का दाता नहीं बल्कि रक्षक है। भूल से राज्य या भारतीय संविधान को मूल अधिकारो का दाता मान लिया गया है। यह सोच या तो हमारी पष्चिम के देषो की नकल का परिणाम है या हमारा अज्ञान। किन्तु है सच। भारतीय संविधान के आधार पर बने राज्य का दायित्व मूल अधिकारो की सुरक्षा का है। इस काम मे राज्य पूरी तरह विफल रहा है। इसका एक कारण तो यह रहा कि राज्य स्वय ही मूल अधिकारो के भक्षण मे जुट गया । दूसरा कारण यह रहा कि मूल अधिकार भी मूल अधिकारो की सुरक्षा मे बाधक बने। राज्य के समक्ष दो वर्ग स्पष्ट थे–

1. अपने मूल अधिकारो की सुरक्षा और दूसरो के मूल अधिकारो का षोषण करने वाले लोग।
2. अपने तथा दूसरो के मूल अधिकारो की सुरक्षा करने वाले लोग। राज्य का दायित्व था कि पहले वर्ग के अपराधियो के मूल अधिकारो मे उस सीमा तक कटौती करते जितनी दूसरे वर्ग की सुरक्षा के लिये आवष्यक होती। किन्तु राज्य पहले वर्ग के मूल अधिकारो के प्रति इतना अधिक संवेदनषील हो गया कि दूसरे वर्ग के लोगो के मूल अधिकारो को पहले वर्ग से खतरा उत्पन्न हो गया। आज स्थिति यह है कि अपराधियो को सजा का प्रतिषत घटते घटते एक तक आ गया है। अपराधियो का मनोबल उॅचा है और सामान्य लोगो का गिरा हुआ। अपराधी तत्वो के मन मे राज्य का भय नही है और सामान्य लोग राज्य से भयभीत है और अपराधियो से भी। अपराधियो के मूल अधिकारो के लिये राज्य इस सीमा तक सतर्क है कि चाहे सौ अपराधी भले ही छूट जाय पर एक भी निरपराध को सजा न हो जाय। जेल मे बन्द संदेही अपराधियो के भोजन वस्त्र तथा अन्य सुविधाओ का स्तर सामान्य नागरिक के स्तर से उॅचा रखने तक की चिन्ता राज्य करता है। इस तरह 99 प्रतिषत नागरिको के मन मे 1 प्रतिषत अपराधियो का भय व्याप्त है जो मूल अधिकारो की सुरक्षा मे राज्य की विफलता का द्योतक है।

   मूल अधिकारो की गलत परिभाषा के कारण एक नया फैषन और चल पडा है जिसके अनुसार आज षिक्षा और रोजगार को भी मूल अधिकार मे शामिल करने की बात उठती है। यहां तक कि राज्य भी सिद्धान्त रूप से इस मांग से सहमत हो रहा है। अधिकांष सामाजिक संस्थाए या समाज सेवा से जुडे लोग इस तरह की मांग मे षामिल है । उन्होने यह सोचा ही नही कि उनकी इस मांग का परिणाम कितना भयानक होगा। सच्चाई यह है कि षिक्षा और रोजगार आज मूल अधिकार मे षामिल है। न तो राज्य किसी व्यक्ति को षिक्षा और रोजगार से वंचित कर सकता है न ही उन्हे षिक्षा और रोजगार के लिये बाध्य कर सकता है। अब इन दोनो को मूल अधिकार मे ष्षामिल करने का अर्थ होगा वास्तव मे इन्हे मूल अधिकार से निकालना । अब षिक्षा जैसे स्वतंत्र कार्य मे भी राज्य का हस्तक्षेप हो जायेगा। यहां तक कि षिक्षा प्राप्त करने वाले को या अपनी अलग ढंग से षिक्षा प्राप्त करने वाले को राज्य जेल मे भी बन्द कर सकता है। मूल अधिकार के नाम पर षिक्षा और रोजगार का दायित्व लेने के बाद राज्य जनता पर और अधिक मनमाने टैक्स लगायेगा। मेरे विचार मे मूल अधिकार के नाम पर राज्य को और अधिक षक्तिषाली बनाने की योजना मे हम जाने अनजाने फंसकर एक गलत मांग करने लगे है।

   प्रष्न 1– रोजगार षिक्षा और स्वास्थ्य मूल अधिकारो मे क्यो नही हो सकते ?

   उत्तर – स्व निर्णय को मूल अधिकार घोषित करने के बाद इन्हे पृथक से लिखने की आवष्यकता क्या है ? क्या यह उचित होगा कि राज्य अपने नियमो के अनुसार किसी व्यक्ति को रोजगार, षिक्षा और स्वास्थ्य सुविधा हेतु बाध्य करने का अधिकार ले ले ? संविधान मे इन्हे राज्य का संवैधानिक दायित्व तो घोषित किया जा सकता है किन्तु उन्हे वर्तमान परिभाषा जो पूरी तरह गलत है, के कायम रहते मूल अधिकारो मे षामिल करना खतरनाक होगा। राज्य के अधिकार, हस्तक्षेप और ष्षक्ति मे वृद्धि का कोई भी कदम घातक होगा। षिक्षा , स्वास्थ्य और रोजगार के क्षेत्र मे तो विल्कुल ही राज्य का हस्तक्षेप नही होना चाहिए।

   प्रष्न 2– धर्म को मूल अधिकार मे षामिल किया गया है किन्तु आपने उसे निकाल दिया। ऐसा क्यो ?

उत्तर – स्व निर्णय मूल अधिकार मे शामिल नही होने से धर्म की मान्यता को मूल अधिकार मे पृथक से घोषित करना पडा। इस पृथक घोषणा के कारण ही धर्म का संगठित स्वरूप बना तथा धर्म और जाति स्वतंत्र इकाईयो के रूप मे खडी होकर समस्याएँ पैदा करने का कारखाना बन बैठी । स्व निर्यण के बाद किसी भी व्यक्ति को अपने धर्म और जाति को मानने, पालन करने, प्रचार करने का उस सीमा तक निर्बाध अधिकार है जब तक वह किसी अन्य के किसी मूल अधिकार मे बाधक न बने।

प्रष्न 3– स्व निर्णय को मूल अधिकार मे षमिल करने से स्वच्छन्दता का खतरा हो सकता है ?

उत्तर – यदि स्वच्छन्दता उस व्यक्ति के स्वयं तक सीमित है तथा उसका प्रभाव किसी अन्य की स्वच्छन्दता मे बाधक नही है तो कोई आपत्ति नही। किन्तु यदि स्वच्छन्दता किसी भी अन्य की स्वतंत्रता मे बाधक है तो वह अपराध है। स्व निर्णय का अर्थ स्व तक सीमित है, अन्य तक नही।

प्रष्न 4– सम्पति को मूल अधिकार मानने से आर्थिक असमानता का खतरा है?

उत्तर – सम्पति को मूल अधिकार से हटा देने के बाद यह खतरा टल गया क्या ? जो काम व्यक्ति , परिवार, गाव, जिला या राष्ट्र के लोग आपसी सहमति से नही कर सकते वह काम कुछ मुटठी भर राजनेताओ की संस्था पूरा कर लेगी यह संभव नही। राज्य को षक्ति देना खतरनाक है।

फिर भी हम सम्पति को मूल अधिकार मे षामिल करने के बाद आर्थिक असमानता दूर करने का पृथक से ऐसा प्रारूप रख रहे है जो इस समस्या से छुटकारा दिला सके।

प्रष्न 5– किसी व्यक्ति को दण्ड देने का अर्थ उसे मूल अधिकारो का उलंघन ही तो है ?

उत्तर – जी हां। मूल अधिकार का अर्थ है व्यक्ति के वे अधिकार जिनमे बिना उसकी सहमति के कोई किसी स्थिति मे तब तक कोई कटौती न कर सके जब तक उसने किसी अन्य के किसी मूल अधिकार का उल्लंघन न किया हो। इस तरह यदि आप अपराध करते है तो आपके मूल अधिकारो पर अंकुष लग सकता है। दूसरी बात यह भी है कि व्यवस्था तो सबकी सहमति से बन रही है। यदि सब लोग मिलकर एक समझौता करते है कि इस प्रकार के कार्य करने की स्थिति मे दण्ड दिया जा सकता है तो यह व्यवस्था उस अपराध करने वाले की सहमति से बनने के कारण उसे बाध्य किया जा सकता है।

प्रष्न 6– यदि कोई व्यक्ति अपनी व्यवस्था से सहमत न हो तो आप क्या करेगे ?

उत्तर – यदि कोई व्यक्ति भारत के लोगो की मान्य व्यवस्था से सहमत न हो तो न तो वह हमारी व्यवस्था मानने के लिये बाध्य है और ना ही हम उसके संबंध मे अपनी व्यवस्था मानने को बाध्य है । समझौता एक पक्षीय नही हो सकता। फिर तो हम उससे एक मिनट मे मनवा लेगे क्योकि ऐसे व्यक्ति को सजा देने के लिये कोर्ट की जरूरत नही होगी। फिर भी यह प्रष्न बेमानी इसलिये है कि कोई व्यक्ति ऐसा षक्तिषाली नही है जो समाज के बनाये नियमो को अमान्य कर दें।

मूल अधिकार की व्याख्या मे अनेक बाधाएं है

1. वे लोग जो पष्चिम के देषो द्वारा दी गई परिभाषा को ही मूल अधिकार की एकमात्र परिभाषा मानते है। ये लोग अपनी पढी हुई परिभाषा के अतिरिक्त कुछ सुनने को तैयार ही नही होते।
2. प्रत्येक समाजषास्त्री समाज मे कुछ कर गुजरने मे इतने उतावले है कि वे कुछ सोचने समझने को तैयार नही। वे चरित्रवान और भले लोग है। अतः इनकी प्राथमिकताएं धूर्त तय करते है। धूर्त राजनेता कुछ मुददे उछालते है और ये समाजषास्त्री उन मुद्दो की ही प्राथमिकता के आधार पर लेकर काम करना षुरू कर देते है। इनका चरित्र और विष्वसनीयता समाज मे इतनी अधिक होती है कि समाज उनके कहे को सच मान लेता है। मुद्दो पर बैठकर बहस करने की आदत डाल ले तो सुधार संभव है।
3. सरकार अपने हस्तक्षेप और षक्ति के अधिकार को कम नही होने देना चाहती । सरकार किसी न किसी बहाने नागरिको पर अपना षिंकजा कसा रखना चाहती है। मूल अधिकार की परिभाषा का घपला भी उसमे से एक है।

अध्याय : 2
स्वराज्य क्यों ? क्या ? और कैसे ?
स्वराज्य क्यो ?

दुनियॉ के अधिकांष विद्वानो ने सैद्धांतिक रूप से स्वीकार किया है कि किसी अच्छी से अच्छी व्यवस्था से भी अपनी व्यवस्था अच्छी होती है। और यदि किसी व्यवस्था करने वाले की नीयत ही संदेहास्पद हो तो किसी व्यवस्था को एक क्षण के लिए भी स्वीकारना हमारी गुलामी और कायरता का प्रतीक है। स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द से लेकर गांधी और विनोबा तक इस विचार को मानते है । पष्चिम विद्वानो ने इस विचार को इन षब्दो मे व्यक्त किया कि न्यूनतम षासन ही सर्वश्रेष्ठ षासन व्यवस्था होती है।

वर्तमान व्यवस्था का हम आकलन करे तो पायेगे कि व्यक्ति के व्यक्तिगत या पारिवारिक जीवन मे राज्य का अधिकतम हस्तक्षेप व्याप्त है। विवाह की उम्र से लेकर सन्तानो की संख्या तक षासन तय करता है। हमारी षिक्षा, स्वास्थ्य तथा रोजगार की सारी चिन्ता षासन के जिम्मे है । हमारे भोजन, भाषा, और रहन सहन के सामान्य कार्यो मे भी षासकीय हस्तक्षेप और नियंत्रण लगातार बढ रहा है। कोटा, परमिट लाईसेंस, आरक्षण टैक्स प्रणाली के माध्यम से तथा सामाजिक न्याय के नाम पर समाज के प्रत्येक क्षेत्र मे राज्य ने अपना हस्तक्षेप बढा लिया है। व्यक्ति कानूनो के जाल मे इस तरह फंसा है कि वह एक डग भी चलने हेतु स्वयं निर्णय नही कर सकता। अपने अपने परिवार या अपने गांव के लिये भी नही।

स्वतंत्रता के पचास वर्षो मे भारत मे षिक्षा, स्वास्थ्य, बिजली, पानी, आवागमन, खान पान तथा सुख सुविधा के क्षेत्र मे अभूतपूर्व प्रगति हुई है। भारत छोटी छोटी उपभोक्ता वस्तुओ के लिये विदेषो की ओर देखता था किन्तु आज भारत बडी से बडी मषीने या उपभोक्ता वस्तुए बनाने मे सक्षम है। औसत उम्र भी बढी है तथा जीवन स्तर भी बहुत सुधरा है। दूसरी और भारत मे भ्रष्टाचार , आतंकवाद, बलात्कार, अपहरण, मिलावट, और जालसाजी जैसे अपराधो मे भी अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। भारत का आम नागरिक भय ग्रस्त है। छोटी से छोटी वस्तु भी शुद्ध नही मिल सकती। उंचे से उचा अधिकारी, नेता या सामाजिक कार्यकर्ता भ्रष्टाचार मे आकंठ डूबा हुआ है। समाज सेवा षोषण और पोषण का पर्याय बन गई है। इस तरह आम नागरिक नारकीय जीवन जी रहा है नैतिकता समाप्त हो रही है संबन्ध टूट रहे है तथा शंका, संदेह तथा अविष्वास सामान्य हो गया है। इस तरह कुछ दिषाओ मे अभूत पूर्व सफलताओ के बाद भी मौलिक दिषाओ मे हमे अभूतपूर्व विफलता हाथ लगी है । कुल मिलाकर हम भैतिक क्षेत्रो मे सफल तथा सामाजिक क्षेत्रो मे असफल हुए है।

व्यक्ति के मूल अधिकारो की सुरक्षा राज्य का दायित्व तथा जनकल्याण कारी कार्य उसके स्वैच्छिक कर्तब्य होते है। कोई भी राज्य चोरी, डकैती, मिलावट, बलात्कार, आतंकवाद, भष्टाचार, धोखाधडी और जाल साजी आदि के उपर षिक्षा स्वास्थ्य, रोजगार, आवागमन, पर्यावरण प्रदूषण, सामाजिक न्याय, भोजन और वस्त्र को वरीयता नही दे सकता क्योकि दायित्व का स्थान कर्तब्य नही ले सकता। कर्तव्य को वरीयता दी गई जिसका परिणाम हुआ कि हमारी प्रगति के पूरे परिणाम उलट गये।

राज्य की दो अलग अलग भूमिकाए हुआ करती है– 1 नीति निर्धारण 2 कार्यान्वयन कर्ता । ये दोनो भूमिकाएं भिन्न भिन्न होती है तथा उनकी चयन प्रणाली से लेकर कार्यप्रणाली तक भिन्न होती है। सामान्य सा सिद्धांत है कि नीति निर्धारण के लिये औसत से अधिक विषेष योग्यता भी आवष्यक है तथा ऐसे व्यक्तियो का चयन भी विषेष योग्य व्यक्तियो द्वारा ही होना चाहिए। दूसरी और कार्यान्वयन करने वाले व्यक्तियो की न तो विषेष योग्यता चाहिये न ही विषेष योग्य व्यक्तियो द्वारा चयन की आवष्यकता। हम लोगो के द्वारा ही चुना हुआ हमारे ही बीच का व्यक्ति हमारे लिये नीति निर्धारक नही हो सकता, व्यस्थापक हो सकता है। दुर्भाग्य से नीति निर्धारको की न तो कोई योग्यता निर्धारित हुई न ही उसके चुनाव के लिये कुछ विषेष टीम बनी बल्कि हमारे द्वारा ही हमारे बीच के लोगो को चुनकर नीति निर्धारक मान लिया गया। ये निर्वाचित लोग व्यवस्था तो कर सकते है किन्तु नीति निर्धारण नही क्योकि न तो उसके पास कोई विषेष योग्यता है न ही विषेष योग्यता प्राप्त व्यक्तियो द्वारा उनका चयन ही किया गया है। इस तरह चयनित नीति निर्धारक तथा उनके चयनकर्ताओ की कोई विषेष योग्यता का मापदण्ड निर्धारित नही होने से ये लोग नीति निर्धारक नही हो सकते। चूंकि अब तक किसी ऐसी प्रणाली का विकास नही हो पाया है जो नीति निर्धारको की विषेष योग्यता तथा चयन कर्ताओं की विषेष योग्यता का कोई निष्चित मापदण्ड तय कर सके अतः उचित तो यही होता कि हमारे बीच से हम लोगो द्वारा ही चुने लोगो की अपेक्षा हम अपनी नीति स्वयं ही बना लेते तथा हमारे बीच से हमारे द्वारा चुने गये लोग उसके कार्यान्वयन तक ही सीमित रहते अथवा यदि बहुत आवष्यक ही होता तो अनिवार्य प्रष्नो पर ही वे मजबूरी मे कोई नीति बनाने की भूमिका अदा करते।

दुर्भाग्य से वर्तमान समय मे राज्य को सभी प्रकार की नीति बनाने का अधिकार प्राप्त है । यहॉ तक कि संसद संविधान मे भी संषोधन कर सकती है संसद ने संविधान की उददेष्यिका तथा व्यक्ति के मूल अधिकारो तक मे फेर बदल कर दिया था । आम नागरिको के पास र्सिफ एक ही अधिकार है कि वह अपने बीच से किसी ऐसे व्यक्ति का चयन करे जिसे इस संबंध मे निर्णय करने का पूरा अधिकार प्राप्त हो जिस तरह कि कभी कभी पावर आफ एटर्नी देने की प्रथा है । किन्तु यहां तो ऐसा पावर देने हेतु बाध्य है । उपरोक्त सभी तथ्यो पर गहराई से विचार करे तो महसूस होता है कि इस सम्पूर्ण प्रणाली मे आमूल चूल परिवर्तन की आवष्यकता है और ऐसा कोई भी परिवर्तन प्रत्येक इकाई को इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता के ही आधार पर हो सकता है जिसे बोल चाल की भाषा मे स्वराज्य कहते है।

स्वराज्य क्या ?

दुनिया मे स्वराज्य शब्द के कई अर्थ प्रचलित है। पहला अर्थ राष्ट्रीय स्वराज्य से जुडा है। दुनिया मे अनेक देष किसी न किसी अन्य देष के गुलाम रहे। उस देष के राजनेताओ ने जन विद्रोह कराकर ऐसे विदेषी षासको से मुक्ति पाई और इस मुक्ति का नाम स्वराज्य घोषित कर दिया। ऐसे लोग यह मानते है कि राज्य व्यवस्था की एक मात्र ईकाई है राष्ट्र ही सर्वोच्च है। राष्ट्रीय स्वराज्य को ही स्वराज्य शब्द का एक मात्र उचित अर्थ मानने वाले सता से जुडे लोग होते है जो स्वंय या ता सत्ता मे षामिल है या होना चाहते है। ये लोग चीख चीख कर आम जनता मे इसी अर्थ को प्रचलित कर देते है । सत्ता की षक्ति उनके इस प्रचार मे सहायक होती है । आज भारत मे स्वराज्य का सबसे अधिक प्रचलित अर्थ राष्ट्रीय स्वराज्य ही है क्योकि अधिकांष राजनेता तथा उनके सहयोगी इस अर्थ के प्रचार मे लगे हुए है ।

स्वराज्य शब्द का दूसरा अर्थ प्रचलित है ग्राम स्वराज्य । राष्ट्रीय स्वराज्य जहां सत्ता लोलुपो द्वारा सत्ता केन्दित अर्थ माना जाता है वही ग्राम स्वराज्य का अर्थ उन लोगो द्वारा प्रचारित किया जा रहा है जो सत्ता का विकेन्द्रीकरण चाहते है तथा सत्ता त्यागी है। ये लोग राष्ट केन्द्रित सत्ता को ग्राम केन्द्रित देखना चाहते है। यह वर्ग भी पूरी षक्ति से इस अर्थ को प्रचारित करने मे लगा है। इन सबके पास सत्ता की सुविधा नही है किन्तु गांधी और विनोबा के नाम उनके प्रचार मे बहुत सहायक है। राष्टीय स्वराज्य के बाद ग्राम स्वराज्य शब्द ही प्रचलित है जो यधपि अब तक बहुत कम प्रचलन मे है किन्तु धीरे धीरे जोर पकड रहा है। ग्राम स्वराज्य की सोच वालो की सबसे बडी दिक्कत यह है कि वे अब तक ग्राम और ग्राम से नीचे की इकाई व्यक्ति, परिवार तथा उपर की इकाई जिला, प्रान्त और राष्ट्र के बीच तालमेल का कोई सर्व सम्मत चित्र नही बना पाये है। ग्राम स्वराज्य के भिन्न भिन्न समर्थक भिन्न भिन्न भाषा बोलते है। कोई आदिवासी स्व शासन की बात बोलता है तो दूसरा ग्राम गणराज्य की, तीसरा ग्राम मे भी प्रत्येक व्यक्ति की सहमति को अनिवार्य मानकर चल रहा है । ऐसे और भी अनेक अर्थ भिन्न भिन्न तरीके से ग्राम गणराज्य के प्रचलित है।

स्वराज्य षब्द का तीसरा अर्थ हे व्यक्ति स्वातंत्र। अधिकांष पष्चिम के देष स्वराज्य का अर्थ व्यक्ति स्वातंत्र से लेकर चलते है । उनका मानना है कि व्यक्ति ही एक मात्र प्राकृतिक इकाई है बाकी सब कुछ तो व्यक्ति द्वारा बनाई गई व्यवस्था मात्र है। पष्चिम के देषो के पास धन की अधिकता होने से उनका यह अर्थ भी काफी प्रचलित है। किन्तु ये मानवाधिकार वाले भी स्वतंत्रता और उदंडता के बीच कोई विभाजन रेखा स्पष्ट नही कर पा रहे। व्यक्ति को कितनी स्वतंत्रता हो और कितना अंकुष लगे यह कही न कही तो निष्चित होना ही चाहिये। दुर्भाग्य से मानवाधिकार को स्वराज्य से जोडने वाले इसमे सफल नही रहे है। एक चौथा अर्थ है प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता। इसमें व्यक्ति और समाज को स्वाभाविक इकाई माना गया है तथा परिवार से लेकर व्यक्तिगत निर्णय तक ही करने की छुट दी गई है। इससे अधिक का उसका हस्तक्षेप सीमा उल्लंधन होगा। व्यक्ति अपनी ही सीमा मे रहेगा तथा समाज उसे अपने स्वराज्य की गारंटी देगा अर्थात उसके व्यक्तिगत निर्णय के अधिकार परिवार को पारिवारिक मामलो मे, गांव को गांव संबंधी मामलो मे जिला को जिला संबंधी, प्रान्त को प्रान्त संबंधी तथा राष्ट को राष्टीय मामले मे होगा। इस व्यवस्था मे सत्ता विकेन्द्रित नही होगी बल्कि अधिकार विकेन्द्रित हो जायेगे। ग्राम स्वराज्य की धारणा मे राष्ट्रीय सरकार गांव को अधिकार दे रही है और उसकी जब इच्छा हो तभी वह यह अधिकार वापस ले ले। नई व्यवस्था मे सरकार गांव के अधिकार तय नही करेगी बल्कि गांव तय करेगे कि राष्ट्रीय सरकार के पास क्या अधिकार हो। इस अर्थ मे कुछ विषेषताएं है –

(1) इनमे व्यक्ति, गांव और राष्ट्र तक को पृथक पृथक इकाई मानकर उन्हे स्वराज्य दिया गया है।

(2) इसमे उपर की इकाईयो के कर्तव्य और अधिकारो का निर्धारण तथा सीमांकन नीचे की इकाईयॉ करेगी अर्थात् परिवार के सदस्य मिलकर अपने परिवार की कार्य प्रणाली तय करेगें तथा गांव के निवासी व परिवार मिलकर अपने गांव की।

(3) यह परिभाषा गांधी जी और विनोबा जी की धारणा के पूर्णतः अनुकूल है। विनोबा जी ने भी कहा है कि गांव के लोग सर्व सम्मति से जैसी चाहे व्यवस्था कर सकते है । किसी अन्य गांव को या राष्ट्र तक को हस्तक्षेप का कोई अधिकार नही होगा। किन्तु गांव संबंधी कोई भी निर्णय प्रत्येक व्यक्ति की सहमति से ही होगा। नई व्यवस्था मे भी यही प्रावधान है कि बिना सबकी इच्छा के कुछ नही होगा।

(4) ग्राम स्वराज्य की अवधारणा मे स्वराज्य की गारंटी हेतु किसी प्रावधान का अभाव है जो स्वराज्य व्यवस्था मे उपर की ईकाईयो का दायित्व है। ग्राम स्वराज्य व्यवस्था के अन्तर्गत यदि कोई अन्य गांव या जिला किसी गांव के निर्णय को बाधित करे तो क्या कर सकते है यह स्पष्ट नही है। नई व्यवस्था मे यह स्पष्ट है कि यह समाज का दायित्व है। क्योकि समाज ने इकाईगत स्वतंत्रता की सुरक्षा की गारंटी दी है

स्वराज्य की इस चौथी अवधारणा के प्रसार प्रचार मे भी कई बाधाऍ है। पहली बाधा तो यह है कि समाज के अमूर्त होने से उसका स्थान एक विष्व सरकार को लेना था। किन्तु अब तक राष्ट्र के उपर की अधिकृत इकाई नही होने से राष्ट्रो को किसी भी इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता मे बाधा उत्पन्न करने से रोकने वाला कोई नही है। दूसरी बाधा है इसके पास साधनो का अभाव। न तो इस विचार को सत्ता की सुविधा प्राप्त है न ही किन्ही महापुरूषो का नाम इससे जुडा है।

फिर भी स्वराज्य का एक ही उपयुक्त अर्थ हो सकता है कि प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता । यह विचार अब तक सबसे कम प्रचलन मे है किन्तु धीरे धीरे लगातार प्रचलन मे बढ रहा है।

स्वराज्य कैसे

कोई भी सिद्धात चाहे कितना भी अच्छा हो किन्तु यदि वह लागू नही होता तो बेकार है। स्वराज्य आना चाहिये, स्वराज्य का स्वरूप कैसा होगा यह उपर स्पष्ट हुआ किन्तु इतना ही महत्वपूर्ण यह सोच भी है कि यह आयेगा कैसे ? किसी भी व्यवस्था को स्थापित करने के सिर्फ दो ही तरीके है :— 1. संवैधानिक 2 जनक्रान्ति। संवैधानिक तरीके मे शामिल होता है चुनावो द्वारा संविधान मे ऐसा परिवर्तन कराना जो नई व्यवस्था स्थापित कर सके। इस तरीके मे जनमत जागरण प्रमुख प्रक्रिया है तथा इस जन मत जागरण के लिए संविधान के द्वारा प्रदत्त अधिकारो का प्रयोग किया जाता है। दूसरा तरीका है जनक्रांति। यह क्रान्ति हिंसक भी हो सकती है तथा अंहिसक भी। नक्सलवाद हिंसक क्रांन्ति का स्वरूप है तथा गांधीवाद अहिंसक क्रांन्ति का। दोनो ही संवैधानिक तरीके से सविधान मे संषोधन के पक्षधर नही। मेरे विचार मे क्रांन्ति की आवष्यकता तभी होती है जब संवैधानिक तरीके से व्यवस्था परिवर्तन के मार्ग बन्द हो। भारतीय संविधान मे व्यवस्था परिवर्तन के मार्ग खुले है। अतः भारत मे किसी हिंसक या अहिंसक क्रांन्ति की आवष्यकता नही है।

यह मानना भी गलत है कि वर्तमान व्यवस्था धन बल तथा बाहुबल के द्वारा राजनैतिक मार्ग से परिवर्तन ही नही होने देगी। यदि ऐसा होता तो मात्र जय प्रकाष जी के चरित्र के समक्ष बिना किसी राजनैतिक संगठन के सिर्फ थोडे से ही समय मे पुरानी व्यवस्था ने घुटने नही टेके होते। विष्वनाथ प्रताप जी के समय मे भी यही हुआ। यह अलग बात है कि नई व्यवस्था की कोई स्पष्ट कल्पना के अभाव तथा स्वराज्य के स्थान पर सुराज्य देने के प्रयास ने उक्त दोनो प्रयासो को सत्ता परिवर्तन तक सीमित कर दिया । मै पूरी तरह स्पष्ट हूॅ कि भारत मे किसी हिंसक अहिंसक क्रांन्ति के प्रयोग की अपेक्षा संवैधानिक तरीके से भारत के सविधान मे से वे सभी अंष निकाल दिये जाये जो शासन को सभी इकाईयो के इकाईगत निर्णय मे हस्तक्षेप के असीम अधिकार देते है तो संविधान का प्रारूप भी छोटा हो जायेगा तथा स्वराज्य भी आ जायेगा। भारतीय संविधान की अनेक धाराऍ षासन के कर्तव्यो को निर्धारित करती है।संविधान के अनुच्छेद 38 से 51 तक ऐसे ही कर्तव्यो से भरे पडे है। चुकि संविधान ने षासन से ऐसे कर्तव्यो की अपेक्षा की है, अतः इन कर्तव्यो को पूरा करने के लिये षासन को अधिकारो द्वारा षक्ति भी दी गई है। यह षक्ति ही षासन को अन्य इकाईयो के इकाईगत निर्णय मे हस्तक्षेप की सुविधा प्रदान करती है। अनुच्छेद चालीस के अनुसार षासन का काम नही बल्कि ग्राम पंचायतो का गठन या विघटन मे षासकीय हस्तक्षेप की आवष्यकता ही नही है। अतः मेरे विचार मे संविधान से ऐसी अनेक धाराओ का निकालना तथा कुछ संषोधन मात्र ही नई व्यवस्था स्थापित करने के लिए पर्याप्त है।

अन्तिम विचारणीय बिन्दु यह है कि संविधान संषोधन कैसे होगा ? संविधान संषोधन का एक मात्र मार्ग है संसद मे दो तिहाई बहुमत द्वारा प्रस्ताव का पारित होना यह काम ही बहुत कठिन है। इसके लिये मेरी कल्पना मे निम्न तरीका संभव है

1. नई व्यवस्था का एक स्पष्ट प्रारूप बने। इस प्रारूप के आधार पर वर्तमान संविधान मे संषोधन का एक प्रारूप तैयार हो। वह प्रारूप ही जनमत जागरण का आधार होगा तथा एक तरह का Manufasto होगा। प्रारूप बनाने का कार्य प्रारंभ है। इस प्रारूप पर कई बार प्रारंभिक चर्चाए भी हो चुकी है। वर्ष 1999 के अक्टूबर मास मे रामानुजगंज मे पन्द्रह दिवसीय सम्मेलन मे इस प्रारूप को अन्तिम रूप दिया जायेगा। इस सम्मेलन मे देष के सौ विद्वानो की सहभागिता होगी जो भिन्न भिन्न क्षेत्रो, विचारो तथा व्यवसायो के लोग होगे। इस प्रारूप के अन्तिम निर्माण के बाद प्रारूप समिति भंग हो जायेगी।
2. एक नई समिति बनेगी जो स्वराज्य संविधान चेतना अभियान शुरू करेगी तथा जनमत जागृत करेगी।
3. चेतना अभियान की सफलता के आधार पर पूरे देष के प्रत्येक लोकसभा क्षेत्र से ऐसे व्यक्तियो के फार्म भरवाये जायेगे जो स्वराज्य के आधार पर संविधान संषोधन का कार्य करे तथा तीन माह मे ही संषोधन पूरा करके लोकसभा भंग कर दें।
4. ऐसे चुनाव लडने वाले स्वंय चुनाव नहीं लडेगे। ये लोग न तो अपने क्षेत्र मे प्रचार करे न ही खर्च करें। किसी अनजान स्थान से वे फार्म भरे। इस तरह चुनाव जनमत संग्रह का स्वरूप ग्रहण करेगा। यह बात अभी संभव नही दिखती किन्तु जय प्रकाष की आंधी मे बहुत से लोग अलग अलग अनजान क्षेत्रो से जीत गये थे, बोट जयप्रकाष जी को मिल रहे थे।

इस कार्य के लिये निम्न आवष्यकताए होगी—

1. अन्तिम प्रारूप बन रहा है तथा अक्टूबर 99 तक बन जायेगा।
2. अभियान हेतु टीम 1999 अक्टूबर के बाद बन कर अस्तित्व मे आयेगी। अन्य आवष्यक योजनाए आगे समय पर बनेगी। मेरे विचार से स्वराज्य स्थापित करने का यही एक मात्र मार्ग है।

समस्याऍ—

1. भारत के अधिकाष लोग गुलाम मानसिकता के हो गये है। गुलामी मे जीना उनकी आदत बन चुकी है। ये लोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे षासकीय हस्तक्षेप और मदद मांगने के आदी है। ये लोग राजाओं की गुलामी, अग्रेजों की गुलामी तथा वर्तमान व्यवस्था की गुलामी से आगे कुछ भी सोचने के लिये तैयार नही है। ये सब लोग स्वयं को अयोग्य ना समझ तथा षासन को योग्य मानते है।
2. मुठी भर षासक या षासन से जुडे लोग षासकीय मानसिकता के हो गये है। षासन करना उनकी आदत हो चुकी है। आम लोगो के जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हस्तक्षेप तथा सहायता करना ये लोग अपना अधिकार तथा कर्तव्य समझते है। ये लोग स्वय को योग्य तथा समझदार मानते है जबकि आम लोगो को अयोग्य और ना समझ।
3. राष्ट्रवादी लोग जो स्वराज्य को राष्ट्रीय स्वराज्य तक सीमित करके निरंतर राष्ट्रवाद के प्रचार मे लगे रहते है। ये लोग तर्क के स्थान पर राष्ट्रीय विचारो की भावना फैलाते है। ये स्वराज्य नही सुराज्य का नारा देते है जिसका अर्थ होता है एक अच्छी व्यवस्था। यह सुराज्य का नारा और राष्ट्रवाद की भावना ही उन्हे षासन करने का अधिकार प्रदान करती है।
4. स्वराज्य वादी लोग जो अब तक स्वराज्य को न परिभाषित कर सके है नही समझते है। गांधी और विनोबा के कहे गये शब्दो का प्रचार ही इनका एक मात्र कार्य है। ये लोग ग्राम स्वराज्य के लिये भी आंदोलन करते है तथा साथ ही साथ इनके आंदोलन मे षिक्षा, राजगार, गो हत्या बन्दी, स्वावलम्बन, शराब बन्दी, अष्लील चित्र प्रदर्षन पर रोक, खादी ग्रामधोग का प्रचार प्रसार, महिला आदिवासी हरिजनो के साथ सामाजिक न्याय, पर्यावरण सुरक्षा हेतु पेड काटने पर प्रतिबन्ध, श्रम मूल्य वृद्धि, बाल बिवाह निवारण, आदि अनेक मामलो मे शासकीय हस्तक्षेप और कानूनी प्रावधान की मांग भी शामिल रहती है जबकि ये सभी प्रकार के आंन्दोलन ग्राम स्वराज्य की अवधारणा के विपरीत तथा स्वराज्य मे बाधक है। ये सभी लोग वैचारिक दृष्टि से स्वराज्य के पक्षधर है किन्तु मानसिक दृष्टि से ये नई व्यवस्था को अपने ढांचे मे फिट देखना चाहते है जबकि स्वराज्य के साथ कोई शर्त नही हो सकती । मै नही समझ पाता कि इकाईगत स्वतंत्रता के पक्षधर लोग ही इकाईयो के इकाईगत कार्यो की आदर्ष संहिता बनाने के अनावष्यक कार्य मे क्यो लगे है? जब इकाईगत स्वतंत्रता हो जायेगी तथा

इकाईगत स्वतंत्रता मे बाधक व्यवस्था से मुक्ति हो जायेगी तब आदर्ष संहिता की सलाह देने की क्या आवष्यकता होगी ? इस तरह स्वराज्य के ये आंदोलन कर्ता भी स्वराज्य की अवधारणा को अस्पष्ट तथा हौच पौच करने के जिम्मेदार है।

5. ग्राम गणराज्य के पक्षधर कुछ लोग जिन्होने गांव से व्यक्ति या गांव से राष्ट्र के तालमेल पर कुछ नही सोचा, ये लोग गांव को सम्पूर्ण अधिकार देना चाहते है। ये लोग न्याय और सुरक्षा की व्यवस्था अपने गांव को देना चाहते है। गांव अपने ग्रमीण क्षेत्र मे न्याय और सुरक्षा की व्यवस्था अपने गांव वालो की सहमति से कर सकता है इसमें कुछ भी गलत नही है। किन्तु गांव किसी व्यक्ति या परिवार के इकाईगत जीवन मे उसकी सहमति के बिना हस्तक्षेप नही कर सकता। गांव को ऐसे हस्तक्षेप से कौन रोकेगा ? आखिर कोई न कोई इकाई तो होनी ही चाहिये। यदि किसी इकाई को महसूस हो कि गांव द्वारा लिया गया निर्णय उसके साथ अत्याचार है तो उसके उपर की इकाईयो से न्याय करने और सुरक्षा मांगने का अधिकार है और यह अधिकार अन्त मे समाज रूपी अन्तिम इंकाई तक सुरक्षित है। यह न्याय और सुरक्षा का अन्तिम अधिकार किसी बीच की इकाई को नही दिया जा सकता है। यही दो कार्य मुख्य रूप से विष्व सरकार के होने चाहिये जो समाज का प्रतिनिधित्व करेगी। अभी विष्व व्यवस्था के अभाव मे अन्तिम इकाई राष्ट्र तक है। अत यह कार्य अस्थायी तौर पर राष्ट्र का है। मेरे विचार मे प्रत्येक इकाई के इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता की गांरटी सबकी सहमति से संभव हो तो वह ऐसा कर सकती है।

6. कुछ लोग जिन्होने राजनीति से घृणा कर ली है । ये लोग भारतीय संविधान पर चर्चा से भी परहेज करते है और चुनावो से भी। अब तक चुनाव सत्ता परिवर्तन के उददेष्य से हुए। जो लोग सत्ता के खेल को अनावष्यक समझ कर उससे दूर रहे उनके दृष्टिकोण को तो ठीक कहा जा सकता है किन्तु जो चुनाव षब्द से ही बिदकते है उनकी बात नही समझ मे आती। यदि नई व्यवस्था के प्रारूप पर पूरे देष का जनमत होना हो और सरकार राजी न हो तो क्या उपाय है? संवैधानिक खाना पूरी करने के लिये किसी न किसी का नाम भरना होगा और पैसा भी जमा करना होगा। ये हमारे महापुरूष इस प्रक्रिया को भी चुनाव से जोड कर देखने की भूल करते हे ओर उनकी इस भावनात्मक भूल से स्वराज्य अभियान मे बाधा उत्पन्न होती है।

मुझे खुषी है कि असंभव तक कठिन दिखने वाले स्वराज्य अभियान मे धीरे धीरे सफलता मिल रही है। अलग अलग विचारो के अनेक विद्वान एक स्थान पर बैठकर प्रारभिक विचार विमर्ष षुरू कर चुके है। वर्ष 1999 के अक्टूबर तक अन्तिम प्रारूप भी बनना कठिन नही दिखता। उसके बाद चेतना अभियान प्रारंभ होगा । अब तक के आकलन के अनुसार 2005 तक सफलाता के लिये आवष्यक जनमत खडा हो जायेगा। और तब हम स्वराज्य के गांधी विनोबा के स्वप्नो को पूरा कर सकेगें।

सम्भावित प्रष्नः–

प्रष्न 1– गांव को ही स्वराज्य की अन्तिम इकाई मानने मे क्या हर्ज है?

उत्तर– गाव को इकाई मानने के बाद भी परिवार और व्यक्ति का अस्तित्व तो रहेगा ही। आप गांव को इकाई कहकर परिवार और व्यक्ति को अधिकार दे इसकी अपेक्षा व्यक्ति से ही प्रारंभ करके परिवार और गांव की अनेक समस्याएँ परिवार तक सीमित कर हल हो जायेगी। गांधी जी ने ग्राम स्वराज्य मे व्यक्ति को इन्कार नही किया है। उनकी दृष्टि मे ग्रम स्वराज्य राष्टीय स्वराज्य के बाद एक सीढी है जिससे हम पूर्ण स्वराज्य की और आगे जा सकते है। यदि किसी भाई के अनुसार ग्राम स्वराज्य ही गांधी जी की अंतिक इकाई थी तब भी हमे औचित्य के आधार पर परिवार और व्यक्ति के स्वराज्य को स्वीकार करना चाहिये।

प्रष्न–2. यदि सभी व्यक्ति परिवार या गांव स्वतंत्रता से निर्णय करेगें तो अराजकता हो जायेगी ?

उत्तर– स्वराज्य की इस परिभाषा मे व्यक्ति परिवार या गांव को कोई निर्णय करने की स्वतंत्रता हो ऐसा नही है बल्कि वे इकाईगत निर्णय ही कर सकते है अर्थात ऐसे निर्णय जो किसी अन्य इकाई की स्वतंत्रता मे बाधक न हो । अराजकता तो तब होगी जब किसी व्यक्ति या परिवार का कोई निर्णय या कार्य किसी अन्य व्यक्ति या परिवार की स्वतंत्रता मे बाधा उत्पन्न करें। कोई इकाई अपनी इकाईगत सीमा मे कुछ भी करे और दूसरे की स्वतंत्रता का अतिक्रमण न हो तो इसमे किसी अन्य को कोई आपत्ति क्यों हो ?

प्रष्न 3– यदि कोई व्यक्ति सडक पर नंगा घूमें तो यह स्वराज्य होगा या नही ?

उत्तर– कोई व्यक्ति अपने कमरे मे नंगा रहे यह उसका स्वराज्य है। परिवार मे नंगा रहे यह पारिवारिक स्वतंत्रता है और गांव मे नंगा घूमे यह गांव की इच्छा पर निर्भर है। परिवार मे नंगा रहने पर परिवार ही आपत्ति कर सकता है गांव नही।

प्रष्न 4– किस इकाई के कौन से इकाईगत अधिकार है और कौन से नही इसका निर्णय कौन करेगा ?

उत्तर– प्रत्येक इकाई के नीचे वाली इकाईया इकठ्ठी होकर अपनी उपर वाली इकाई के अधिकार और कर्तव्यो का निर्धारण करेंगी।

प्रष्न 5– अभी हम लोग चुनकर जिन्हे भेजते है वे हमारी व्यवस्था करते है इसमे क्या दोष है ?

उत्तर – वर्तमान चुनाव प्रणाली ही दोष पूर्ण है । एक सूर्य किरण पद्धति है जिसमे सूर्य की उर्जा सीधे पृथ्वी को प्राप्त होकर फिर धीरे धीरे उपर जाती है दूसरी अग्नि उर्जा पद्धति है जिसमे उर्जा अपने मूल स्त्रोत से ही धीरे धीरे उपर जाती है। अब तक हम लोग सूर्य उर्जा पद्धति से चल रहे है जहां सारे अधिकार मतदान के द्वारा उपर वाले को देते है तथा वह इच्छानुसार धीरे धीरे हमारी व्यवस्था करता है। अब हम अग्नि उर्जा पद्धति अपनाना चाहते है जिसमे अधिकार धीरे धीरे उपर की और आवष्यकता अनुसार बढते है।

एक बात मुख्य यह है कि यह चुनाव प्रणाली ही गलत है। वर्तमान चुनाव पद्धति के अनुसार हमे अयोग्य और अक्षम होने से अपने अधिकार दूसरो को देने चाहिए । यदि हम अयोग्य और अक्षम है और चुने गये लोग हमारे संरक्षक है तो संरक्षक का चुनाव तो और अधिक योग्य लोगो द्वारा किया जाना चाहिये। यदि संरक्षक संरक्षित से अधिक निः संदेह योग्य हो तथा उसके निर्वाचन मे संरक्षित की कोई भूमिका न हो। अनेक लोग मिल कर किसी व्यक्ति को प्रतिनिधि तो चुन सकते है परन्तु संरक्षक नही। प्रतिनिधि और संरक्षक मे मौलिक अन्तर यह है कि प्रतिनिधि के अधिकारो पर चयन कर्ता का अंकुष होता है। प्रतिनिधि का अंकुष नियुक्तिकर्ता पर नही होता। अतः यह चुनाव पद्धति ही अव्यावहारिक है जिसमे प्रतिनिधि को चुने जाते ही उसे संरक्षक की भूमिका प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न 6– यदि कोई इकाई अपनी उपर वाली इकाई के निर्णय को स्वीकार न करे तथा संबंध विच्छेद कर ले तब क्या होगा?

उत्तर– यदि व्यक्ति परिवार से संबंध विच्छेद कर ले तो वह पृथक परिवार बना सकता है क्योकि व्यक्ति सचल इकाई है। परन्तु यदि परिवार गांव के साथ न रहना चाहे तब कठिनाई है। यदि एक दो परिवार ऐसा प्रयास करते है तब तो वे सफल नही हो सकते परन्तु यदि अनेक परिवार ऐसा करते है और एक गांव मे ही दो ग्राम सभाए बन जाये तो वैसी परिस्थिति मे सिद्धान्ततः तो उन्हे वह छूट होनी चाहिये परन्तु व्यावहारिक स्वरूप मे इसकी कोई सीमा रेखा बनानी चाहिये जो वे सब बैठकर भी बना सकते है और हम सब भी मार्ग दर्षन कर सकते है । प्रारंभ मे यह कठिनाई है जिस पर हमें विचार करना चाहिए।

प्रष्न 7– क्या सुराज्य षब्द निरर्थक है?

उत्तर – नही। स्वराज्य ही सुराज्य का मार्ग प्रषस्त करता है। जब इकाई को अपने हित अहित के अनुसार निर्णय करने और उसका कार्यान्वयन करने की स्वतंत्रता होगी तभी व्यवस्था दोष रहित होगी। यदि किसी इकाई की इच्छा के विरूद्ध उसके हित मे निर्णय लिये और कार्यान्वित किये जाते है तो न स्वराज्य रहेगा न सुराज्य। अतः स्वराज्य के अभाव मे सुराज्य की कल्पना व्यर्थ है। वर्तमान भारत मे सुराज्य का प्रयास हुआ जो असफल रहा।

प्रष्न 8– कोई भी इकाई किसी अन्य इकाई की इकाईगत स्वतंत्रता बाधित नही करेगी। तब अनुषासन का क्या होगा ? यदि किसी गांव ने तय किया कि यहा कोई पैजामा नही पहिनेगा। एक व्यक्ति ने विरोध किया तब वह व्यक्ति गांव के निर्णय को मानने को बाध्य है या नही? साथ ही यह भी बताइये कि इकाई के निर्णय मे बहुमत का प्रतिषत क्या होना चाहिये ?

उत्तर – इकाईया दो तरह की होती है (1) चल (2) अचल। चल इकाई का कोई भी सदस्य किसी भी प्रस्ताव के विरूद्ध बीटो का प्रयोग करके स्वयं को उक्त प्रस्ताव से अलग कर सकता है। इकाई चाहे तो उक्त सदस्य को अपना सदस्य रखे या हटा दे। वह सदस्य कोई अन्य समकक्ष इकाई मे षामिल हो सकता है। परन्तु अचल इकाई में तो इकाईयो के हस्तक्षेप की सीमा भी तय करनी पडेगी और बहुमत का प्रतिषत भी। अचल इकाई मे सर्वसम्मति का तरीका सिद्धातः तो ठीक है परन्तु व्यावहारिक रूप नही। परिवार तो स्पष्ट रूप से सचल इकाई है। अतः वहा तो निर्णय सर्वानुमति से संभव है। परन्तु गांव से लेकर राष्ट्र तक की इकाईयो के विषय मे स्थिति कुछ भिन्न है। यदि गांव या जिले की एक ही निष्चित इकाई होगी तथा उस इकाई का कोई सदस्य असहमत होने पर उसी क्षेत्र मे रहते हुए नई इकाई नही बना सकता तो हमे ऐसी इकाईयो के इकाईगत अधिकारो की स्पष्ट व्याख्या भी करनी होगी और निर्णय के लिये एक न्यूनतम प्रतिषत भी बनाना होगा। अन्यथा हम उस इकाई को चल इकाई मान सकते है और किसी सदस्य को पृथक इकाई बनाने का अधिकार भी दे सकते है।

प्रष्न 9– चल इकाई और अचल इकाई को और स्पष्ट करे ?

उत्तर – जब किसी संगठन की सदस्यता स्वैच्छिक हो तो उसक चल इकाई मानेंगे अर्थात वैसी ही तथा उसी स्तर की किसी अन्य इकाई की सदस्यता ग्रहण करनेमे कोई कठिनाई न हो। परन्तु यदि सदस्यता अनिवार्य या स्वाभाविक हो तथा सदस्यता छोडना प्राकृतिक कारणो से संभव न हो तो उसे अचल इकाई कहेंगे। वर्तमान समय मे राष्ट से लेकर गांव तक की इकाईया अचल है। इनका कोई भी सदस्य अपने निवास क्षेत्र का स्वाभाविक सदस्य है। परिवार भी रिष्तों के साथ जुडा होने से कुछ सदस्यता की छूट दी गई है। गांव सें लेकर राष्ट्र तक की इकाईयो के विषय मे बहुत गम्भीरता से विचार करना होगा।

परिवार और उसकी संरचना

सृष्टि के प्रारम्भ से ही परिवार की संरचना षुरू हो गई । दुनिया के किसी भी देष मे किसी भी समय परिवार षब्द समाप्त नही हुआ भले ही समय समय पर उसके अर्थ बदलते रहे हो। पुराने समय मे परिवार का अर्थ था एक ही चूल्हे तथा एक मुखिया की व्यवस्था के अन्तर्गत रहने वाले रक्त संबंधियो का समूह। इस परिभाषा मे बाद मे संषोधन हुआ और परिवार का अर्थ पिता माता और बच्चों तक सिमट गया । यदि उसमे चाचा–चाची आदि भी षामिल हो तो उसे संयुक्त परिवार कहा जाने लगा। अनेक देषों मे सयुक्त परिवार के स्थान पर कबीला षब्द भी प्रचलित हुआ। प्राचीन काल के परिवार मे सम्पति पर परिवार का अधिकार होता था तथा परिवार के प्रत्येक सदस्य के सुख दुख का दायित्व परिवार का होता है। बाद मे यह व्यवस्था बदल गई और सम्पति व्यक्तिगत तथा सुख दुख भी व्यक्तिगत होने लगा। चीन मे परिवार की इस परिभाषा को समाप्त करके एक नई परिभाषा तैयार हुई जिसे कम्यून कहा गया। इसमे रक्त संबंध से कोई मतलब नही रखा गया बल्कि आपसी सहमति के आधार पर एक साथ रहने वालो को कम्यून नाम दिया गया है।

यदि हम दुनिय भर का विचार करे तो पष्चिम की परिवार व्यवसथा टूट गई है, जबकि चीन रूस आदि मे समाप्त। भारत मे वर्तमान व्यवस्था अब भी रक्त संबंधो के साथ जुडी है यद्यपि परिवार की भावना, संरचना तथा व्यवस्था लगातार टूटती जा रही है । यदि पचास वर्ष पूर्व के भारत मे परिवारो की सदस्य संख्या का औसत सात था तो दस वर्ष पूर्व यह औसत घटकर पांच और अब तो पांच सदस्य प्रति परिवार से भी कम हो गया है। स्वतंत्रता के समय तेंतीस करोड की आबादी मे यदि पांच करोड परिवार थे तो आज सौ करोड की आबादी मे पचीस करोड तक परिवार बन गये है । परिवार मे टूटन लगातार तीव्र गति से जारी है।

1 भारतीय संविधान का द्विस्तरीय होना– भारतीय संविधान ने व्यवस्था की दो ही इकाईया मानी है– 1 व्यक्ति 2 समाज। बीच मे परिवार को संवैधानिक मान्यता प्रदान नही की गई यहां तक कि सम्पूर्ण संविधान मे कही भी एक बार भी परिवार शब्द षामिल नही है । इस तरह परिवार षब्द, उसकी संरचना तथा उसकी व्यवस्था संवैधानिक आधार पर न होकर षासकीय आधार पर हुई।

2 राज्य द्वारा व्यक्ति का अधिक महत्व– परिवार मे रहते हुए भी व्यक्ति को व्यक्तिगत सम्पति रखने की छूट देना भारतीय कानून की एक बहुत बडी कमजोरी रही। प्राचीन काल मे तो परिवार छोडते समय भी सम्पति पर व्यक्ति का कोई हिस्सा नही होता था जिसे उलट कर ऐसा बना दिया गया कि परिवार मे रहकर भी पृथक सम्पति रख सकते है। पता नही कि कानून बनाने वालो ने ऐसी गलत व्यवस्था क्यो की किन्तु ऐसी व्यवस्था हुई अवष्य। इसके परिणाम स्वरूप सम्पति संबंधी विवाद बढने लगे तथा परिवार मे रहते हुए परिवार से पृथक सोचने की प्रवृति को भी प्रोत्साहन मिला। इसी तरह इन्कमटैक्स संबंधी कानूनो ने भी परिवार प्रणाली को बहुत क्षति पहुचाई है। अनेक परिवारो को एक साथ रहते हुए भी पृथक पृथक परिवार का रजिस्टेषन कराने की आवष्यकता महसूस हुई।

3 समाज षास्त्रियो द्वारा व्यक्ति केन्द्रित भावना का विस्तार– अधिकांष धार्मिक और सामाजिक विद्वान व्यक्ति को स्व केन्द्रित करने का अभियान चला दिये। परिवार भावना से विरक्ति का प्राचीन काल का उद्देष्य व्यक्ति को परिवार से उठाकर समाज केन्द्रित करना था । किन्तु आज का साधु सन्तो का प्रचार व्यक्ति को परिवार से हटाकर स्व केन्द्रित कर रहा है।

4 प्रत्येक व्यक्ति का स्व केन्द्रित होना– प्रत्येक व्यक्ति स्वयं तो अधिक से अधिक स्वतंत्रता चाहता है किन्तु वह साथ ही साथ यह भी चाहता है कि दूसरे लोग अपना वैसा आचरण रखे जैसा वह ठीक समझता है । वह स्वयं तो अनुषासन का पालन नही करता किन्तु दुसरो से अनुषासन की अपेक्षा करता है। परिणाम यह हुआ कि समाज मे छोटे छोटे राष्ट्र , राष्ट्र मे छोटे छोटे प्रान्त या जिले, जिले मे छोटे छोटे गांव तथा गांव मे छोटे छोटे परिवारो का क्रम जारी है। प्राचीन समय मे नीचे वाली इकाई उपर वाली इकाई से संबद्ध रहना उचित समझती थी। अब उपर वाली इकाई नीचे वाली इकाई को संबद्ध रखकर अपने अधीन रखना चाहती है जबकि नीचे वाली इकाई अधीन तो दूर की बात है सम्बद्ध भी नही रहना चाहती।

5 वैधानिक तरीके से मुखिया का चयन न होना– प्राचीन समय मे परिवार का एक मुखिया निष्चित होता था। या तो वह सबसे बडा लडका होता था या मुखिया की मृत्यु पर चुन लिया जाता था। अब परिवार मे जो बडा है वह निरन्तर मुखिया बने रहना अपना पारंपरिक अधिकार समझता है चाहे उसमे योग्यता हो या नही, चाहे उसे परिवार के लोग चाहे या न चाहे। ऐसी स्थिति मे परिवार के अन्य लोग घुट घुट कर रहते है या परिवार छोड कर अलग हो जाते है या वे धीरे धीरे लड झगडकर मुखिया को दूर हटाकर नये मुखिया का अस्तित्व खडा कर देते है। मुखिया परिवर्तन की यह कठिनाई आम तौर पर परिवारो मे घुटन, टूटन या कलह का कारण बनती है।

6 उम्र और लिग के आधार पर बनने वाले संगठन– आजकल समाज मे महिला जागृति, युवा जागृति के नाम पर एक नये फैषन की हवा चल पडी है। महिला, बालक और पुरूष सब एक परिवार के ही अंग थे, किन्तु अब इनकी पृथक पृथक चिन्ता करने वाले कानून या आन्दोलनो ने परिवारो के भीतर द्वेष का नया वातावरण तैयार कर दिया है। कुछ तथा कथित समाज चिन्तको ने तो परिवार मे महिलाओ को सप्ताह मे एक दिन का अवकाष जैसा अदूरदर्षी और हास्यास्पद कानून तक बनवाने का प्रयास किया । ऐसी बातो ने परिवार सामंजस्य तथा परिवार भावना को गंभीर क्षति पहुचाई है । परिवार मे स्त्रियो को समान अवसर नही मिलना व्यवस्था के लिये कलंक है तथा इस कलंक को धोने के नाम पर परिवार के स्त्री पुरूषो के बीच दरार उत्पन्न करना घातक है।

समाजशास्त्री चाहे स्वीकार करे या न करे किन्तु यह सच है कि भारत मे परिवारो का अस्तित्व, संरचना तथा परिवार भावना निरंतर टूटन की ओर बढ रही है। यह एक खतरे की घंटी है क्योकि परिवारो का टूटना बहुत घातक है। परिवार भावना व्यक्ति मे उपर की इकाई से सम्बद्ध रहने की भावना की पहली इकाई है। परिवारो की संरचना मे व्यवस्था का सारा बोझ सरकार या समाज पर इकटठा न होकर बंट जाता है जिससे सर्वोच्च इकाई पर अनावष्यक बोझ नही पडता। परिवार संरचना उपर की इकाईयो के अधिकारो का विकेन्द्रीकरण तथा व्यक्ति की उच्श्रृंखलता पर अनुषासन का एक मात्र उपाय है। आज समाज सत्ता के केन्द्रीकरण तथा व्यक्तिगत उच्श्रृंखलता की दौड के बीच पिस रहा है। परिवार रचना इन दोनो टकरावो के बीच का ठहराव होने से आवष्यक है।

यह तो सभी मानते है कि परिवार प्रणाली छिन्न भिन्न हो रही है तथा परिवार प्रणाली का सफलता पुर्वक अस्तित्व आवष्यक है। किन्तु कैसे ? यह सोचना अधिक आवष्यक है। जिन परिवारो के कठोर अनुषासन है, वहा घुटन बढते बढते टूटन मे बदल जाती है । ऐसे परिवारो मे मुखिया के सामने अन्य सदस्य निस्तेज हो जाते है। दूसरी ओर जिन परिवारो मे अनुषासन का अभाव है वहा आपसी टकराव और उच्चश्रृंखलता के कारण असफलता हाथ लगती है तथा लड झगड कर परिवार टूट जाते है। कोई तीसरा रास्ता उपलब्ध नही । अतः अनुषासनहीनता तथा कठोर अनुषासन के बीच का ही मार्ग चुनना होगा। मैने इस संबंध मे सुझाव दिया है कि प्रत्येक परिवार का संचालन एक मुखिया करे जिसे संवैधानिक मान्यता प्राप्त हो। इस तरह अनुषासन बना रहेगा। दूसरी बात यह है कि मुखिया का चुनाव परिवार के लोग किसी भी पद्धति से करे ऐसे चयनित मुखिया को गुप्त मतदान द्वारा परिवार के सदस्यो की सहमति अनिवार्य होगी। इस तरह परिवारो मे घुटन नही रहेगी। अनेक विद्वान मेरे इस सुझाव को परिवारो मे द्वेष के बीजारोपण के रूप मे देखते है किन्तु परिवारो मे मुखिया का चुनाव न हो तो क्या हो ? सब बैठ कर तय कर ले तो वह तय सहमति से हो कि दबाव से। दबाव है कि नही यह बात यदि गुप्त मतदान द्वारा पूरी हो तो आपत्ति क्या है। अब तक मुखिया चयन का परंपरागत तरीका घुटन और टूटन की जड है । इस नई प्रक्रिया से परिवारो मे जो द्वेष पनपेगा वह हमारे लिये एक आवष्यक बुराई है। यदि हम भावना मे बहकर परम्पराओ की लीक पकडे रहे तो परिवार व्यवस्था ही समाप्त हो जायेगी। मुखिया– चयन और गुप्त मतदान प्रणाली एक बार तो परिवारो में टूटन का कारण दिखेगी किन्तु सच्चाई यह है कि यही व्यवस्था बाद मे परिवारो को स्थायित्व प्रदान करेगी।

दूसरा प्रावधान मैने यह किया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक के लिये न्यूनतम दो का परिवार बनाना अनिवार्य कर दिया है। जो व्यक्ति किसी एक व्यक्ति से भी सामंजस्य हेतु प्रतिबद्ध होने को तैयार नही है उसे भारत की नागरिकता नही मिल सकती भले ही व्यक्ति के रूप मे वह रह सकता है। उसे भारत के अन्य नागरिको की व्यवस्था मे भागीदारी की अनुमति नही होगी। अतः उसे मतदान का भी अधिकार नही दिया गया है। यदि वह व्यक्ति भरण पोषण तक सीमित रहे तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति षासन मे निहित करके उसके भरण पोषण का दायित्व षासन का होगा अन्यथा वह मतदान का अधिकार छोडकर सभी प्रकार समान रूप से जी सकता है यह प्रावधान इसलिये आवष्यक है कि जो व्यक्ति अन्य लोगो की व्यवस्था मे भागीदारी चाहता है उसे किसी एक व्यक्ति के साथ रहने की आवष्यकता पूरी करनी ही होगी।

परिवार के संबंध मे मेरा तीसरा सुझाव है कि परिवार की परिभाषा मे ही संयुक्त सम्पति षब्द जोड दिया गया है । इस तरह न तो कोई व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सम्पति रख सकेगा न ही वह परिवार की इच्छा के विरूद्ध व्यय कर सकेगा। परिवार की सम्पूर्ण सम्पति पर भी सभी सदस्यो का समान अधिकार होगा। यदि कोई सदस्य परिवार छोडता है तो वह सम्पूर्ण सम्पति मे परिवार की कुल सदस्य संख्या के आधार पर हिस्सा पायेगा। इस संषोधन से सम्पति मे से अधिकार की सभी जटिलताए समाप्त हो जायेगी । इस संषोधन से महिलाओ का भी परिवार की सम्पति मे समान हक होगा तथा वृद्ध लोगो की मृत्यु के बाद बंटवारे का कोई विवाद नही होगा क्योकि मृतक की सम्पति पर किसी का अधिकार न होकर वह परिवार की सम्पति होगी। विवाह के बाद लडकी यदि ससुराल पक्ष की सदस्य बनती है तो वह पिता परिवार से अपना हिस्सा लेकर पति परिवार मे जायेगी और पति परिवार की सम्पति मे उसका भविष्य मे समान हिस्सा होगा। मेरे विचार मे पारिवारिक सम्पति मे विभाजन का यह न्यूनतम विवादस्पद तथा सर्वश्रेष्ठ मार्ग है

मेरा चौथा सुझाव है कि परिवार की परिभाषा मे संयुक्त सम्पति के साथ साथ संयुक्त उत्तरदायित्व षब्द भी षामिल है। इसका अर्थ यह है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य के आचरण का वैसा ही सयुक्त दायित्व होता है जैसा मंत्री मण्डल का है। किसी भी सदस्य के लाभ हानि अच्छे बुरे का परिणाम सबको समान रूप से मिलेगा। यदि परिवार का कोई एक सदस्य अपराध करता है और न्यायालय समझता है कि परिवार के अन्य सदस्यो ने अपने दायित्व का ठीक से निर्वहन नही किया तो वह परिवार के अन्य सदस्यो को भी सजा दे सकता है । इस प्रावधान से समाज मे अपराधो मे बहुत कमी होगी तथा शासन पर बोझ भी कम हो जायेगा। इस प्रावधान मे यह भी सुझाव है कि ऐसे अपराधी के दण्ड मे उसी परिवार की सहभागिता होगी जिसका वह सजा पाते समय सदस्य होगा न कि उसको जिसका वह अपराध करते समय सदस्य होगा। इस तरह यदि कोई अपराधी आपकी बिना सहमति के अपराध करता है तो उसे आप अपने परिवार से हटाकर स्वंय को सुरक्षित कर सकते है।

मेरा पांचवा सुझाव यह है कि परिवार का निर्माण आपसी सहमति के आधार पर हो। इसमे रक्त संबंध अनिवार्य न हो। इससे दस साधु भी मिलकर एक परिवार बना सकते है। या कोई किसी अन्य जाति का व्यक्ति भी आपसी सहमति से परिवार मे शामिल हो सकता है। यह सुझाव भारतीय परंपरा और साम्यवादी कम्यून पद्धति का मिला जुला स्वरूप है। इस सुझाव से भी परिवार निमार्ण की अनेक जटिलताए समाप्त हो सकेगी।

मेरा छठवॉ सुझाव है कि परिवार मे एक प्रमुख होगा जो उस परिवार का सबसे अधिक उम्र का व्यक्ति होगा। उक्त प्रमुख की भूमिका परिवार मे वही होगी जो भारत मे राष्ट्रपति की होती है। कार्यकारी अधिकार तो प्रधानमंत्री रूपी मुखिया के पास होगें किन्तु अन्तिम अधिकार प्रमुख के पास ही होगें। इस सुझाव से मुखिया चयन से होने वाला बुर्जुगो के मन का हीनभाव समाप्त होगा तथा पीढियो के बीच का टकराव टलेगा। युवा और वृद्ध के बीच की दूरी हटाने का यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है।

मेरा सातवॉ सुझाव है कि प्रत्येक परिवार का एक प्रमुख और उतने मुखिया होगे जितनी ग्राम सभाओ मे परिवार के लोग रहते है । इस तरह कई गांवो मे रहने वाले लोगो का एक परिवार बन सकेगा तथा मुखिया के माध्यम से उक्त परिवार का ग्राम सभा से संबंध रहेगा।

प्रष्न 1– जिस प्रकार चुनावो ने भारत मे गांव तक की व्यवस्था मे दो गुट बना दिये है उसी तरह चुनाव की अनिवार्यता परिवारो मे भी गुटबन्दी षुरू कर देगी। अब तक परिवार इस बीमारी से अछूते है?

उत्तर – आपका कथन सही है। चूंकि चुनावो से इकाई के अन्दर विवाद होते है अतः क्या भारत से चुनावो को खतम कर दिया जाये? आप बताइये कि चुनावो से होने वाला विवाद अधिक नुकसान करेगा कि तानाषाही ? यदि किसी राष्ट, प्रदेष या गांव मे तानाषाही उचित नही है तो परिवार मे तानाषाही क्यो उचित है ? सभी सदस्यो की मुखिया के प्रति वास्तविक सहमति जानने का मतदान के अतिरिक्त क्या तरीका है यह आप बताइये ?

आप जरा इन परिवारो की युवा पीढी या महिलाओ से पूछ कर देखे जहा अयोग्य मुखिया परिवार को पूरी तरह बर्बाद कर रहा है किन्तु छोड नही रहा या ऐसे परिवारो का हाल पूछिये जहा पीढियों का टकराव बाहर आ रहा है या घुटन के रूप मे व्याप्त है। अधिकांष युवाओ की कुंठा या अनुषासन हीनता का प्रमुख कारण है मुखिया मे परिवर्तन की व्यवस्था का अभाव। जब किसी मुखिया को किसी तरह कमजोर किया जाता है तो विवाद उत्पन्न होने से उन्हे परिवार मे सम्मान भी नही मिलता।

प्रष्न–2 आपने परिवार मे दो पद निर्मित कर दिये । इतने पदो की आवष्यकता क्या है? ये पद जटिलता को कम न करके बढायेगे ही ?

उत्तर– परिवार के सम्पूर्ण अधिकार एक व्यक्ति के पास केन्द्रित करना सुविधाजनक तो हो सकता है पर उचित नही। अधिकारो का विकेन्दीकरण हो और सब लोग आपसी सहमति और सूझ बूझ से परिवार चलावे यह प्रणाली निष्चित ही उस प्रणाली से अच्छी होगी जिसमे एक व्यक्ति निर्णय करे और सब लोग पालन करें। इन दोनो पद्धतियो मे कुछ कुछ गुण और दोष विद्यमान है। किन्तु प्रजातांत्रिक प्रणाली अनेक दोषो के बाद भी एकात्मक प्रणाली से अच्छी होती है।

प्रष्न– 3 कोई व्यक्ति अकेला रहे तो उसे मतदान से वंचित करना उसके मौलिक अधिकारो का उल्लंघन है। ऐसा क्यो कर रहे है?

उत्तर– मतदान किसी व्यक्ति का मूल अधिकार न होकर संवैधानिक अधिकार मात्र है। मतदान का अर्थ है व्यवस्था मे सहभागिता। यदि कोई व्यक्ति अकेला ही रहना चाहता है तो उसे दूसरो के विषय मे सोचने, करने या सहभागिता का क्यो अधिकार होना चाहिये ? दूसरे लोग चाहें तो उसे अधिकार दे या न दें। किन्तु वह उसका संवैधानिक अधिकार नही हो सकता। फिर एक बात और है कि हम परिवार प्रणाली की व्यवस्था कर रहे है जिसमे परिवार की रचना अनिवार्य है। न्यूनतम दो व्यक्ति तक ही परिवार बन सकता है। यदि व्यक्ति को वे सारे अधिकार समान रूप से प्राप्त होगे जो नागरिक को है तो कोई व्यक्ति नागरिक क्यो नही बनना चाहेगा? यह भी सोचना होगा कि यदि मतदान के अधिकार से उसे वंचित न करें तो प्रष्नकर्ता यह सुझाव दे कि व्यक्ति और नागरिक के बीच व्यक्ति को अन्यकिस अधिकार से वंचित करे या व्यक्ति की अपेक्षा नागरिक को क्या अधिक अधिकार दे?

प्रष्न– 4 सम्पति सबकी सामूहिक होगी। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन काल मे ही दान पत्र या विल लिख दे तो क्या होगा ?

उत्तर – परिवार मे रहते हुए किसी सदस्य का सम्पति पर कोई अधिकार नही होगा। गांधी जी के ट्रष्टीषिप और पूंजीवाद के व्यक्तिगत सम्पति के बीच परिवार और पारिवारिक सम्पति का रास्ता चुना गया है। इसमे परिवार से हटते हुए सदस्य का सम्पत्ति पर पूरा अधिकार और रहते हुए षून्य अधिकार माना गया है। मरने के पूर्व कोई व्यक्ति सम्पत्ति किसी को देना चाहता है तो उसे परिवार छोडने से ही सम्पत्ति पर अधिकार मिलेगा। अन्यथा नही।

प्रष्न– 5 लडकी पिता परिवार से जाते समय अपना हिस्सा लेकर जयेगी और पति परिवार मे षामिल करेगी यह प्रक्रिया बहुत गलत है और विवादास्पद होगी ?

उत्तर– यह प्रक्रिया जटिल, गलत और विवादास्पद होगी और जो वर्तमान प्रक्रिया है जिसमे विवाह के बाद भी पति परिवार मे गुजारा भत्ता तथा पिता परिवार मे हिस्सा मिलेगा यह प्रक्रिया कम जटिल है कि अच्छे अच्छे वकील भी नही जानते कि लडकी को पिता और पति, परिवार मे कब कितना और किस तरह का हक है। वकीलो के स्वर्ग से छुटकारा पाने हेतु ही यह सीधा सा प्रावधान रखा गया है।

प्रष्न– 6 महिलाओ को सम्पति मे समान अधिकार देना उचित नही ?

उत्तर– महिलाओ को सम्पति मे समान अधिकार देने से या तो वे लोग आपत्ति करेगे जो महिलाओ की समानता के विरोधी है या वे जो महिला समानता के नाम पर राजनीति करना चाहते है। सच्चाई यह है कि परिवार मे महिलाओ को व्यवस्था मे समानता का अधिकार तथा सम्पति मे समान अधिकार मिलने के बाद महिला पुरूष के बीच विवाद की कोई स्थिति ही नही रहेगी। जो महिलाएँ समानता के नाम पर पुरूषो से अलग गुट बनाकर राजनीति का लाभ लेना चाहे उनकी बात को छोड देना ही उपयुक्त है।

प्रष्न– 7 किसी परिवार का एक सदस्य अपराध करे और परिवार मे सबको सजा हो यह कितना न्याय संगत है ?

उत्तर – चार बाते बिलकुल स्पष्ट है–

1. न्याय के प्रयास व्यवस्था को कमजोर करते है।
2. व्यवस्था के प्रयास न्याय को कमजोर करते है।
3. न्याय की प्राप्ति के लिये व्यवस्था अनिवार्य है।
4. व्यवस्था को न्यायपूर्ण होना ही चाहिए। अन्याय पूर्ण व्यवस्था को आतंक कहना चाहिये।

उपर की दोनो बाते नीचे की दोनो बातो से बिल्कुल विपरीत है किन्तु है विल्कुल सच। अधिक से अधिक न्याय की मांग व्यवस्था को कमजोर करती है और उसका अप्रत्यक्ष परिणाम न्याय मे कमी के रूप मे प्रकट होता है । आज भारत मे यही हो रहा है कि हम जितनी व्यवस्था करने मे सक्षम है उससे बहुत अधिक आदर्ष का लक्ष्य लेकर चल रहे है। जैसे किसी के पास चार रोटिया है और आठ खाने वाले। यदि वह व्यक्ति प्रत्येक को एक एक रोटी देने का लक्ष्य निर्धारित कर ले तो यह उसकी मूर्खता होगी। व्यवस्था मे अधिक न्याय की घोषणा का दुष्परिणाम हम भुगत रहे है। अतः हमे अपराधो पर नियंत्रण करना है। यह हमारा लक्ष्य है। इसके लिये हमे परिवारो पर भी कुछ दायित्व अवष्य डालना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि यदि किसी व्यक्ति के अपराधो का लाभ पूरे परिवार ने उठाया है तो सजा अकेले को क्यो ? जब परिवार जानता था तो उसके पहले ही रोकना या निकाल देना था। यदि परिवार सिद्ध कर दे कि उसको पूर्व जानकारी नही थी तो कोर्ट छोड सकता है। अन्तिम बात यह है कि कोई परिवार यदि सजा नही चाहता है तो अब भी उस व्यक्ति को परिवार से निकाल क्यो नही देता ? यदि वह परिवार विहीन होगा तो उसके साथ अन्य को सजा नही होगी और यदि किसी अन्य परिवार मे जायेगा तो वह परिवार भुगतेगा। मेरे विचार मे इस व्यवस्था से अपराध बहुत रूक सकते है।

वर्तमान व्यवस्था मे भी मैने सुना है कि कभी कभी सामूहिक जुर्माना होता है। यह सामूहिक जुर्माना पूरे गांव या क्षेत्र को हो जाता है । मै तो सिर्फ परिवार तक ही सीमित कर रहा हूँ।

प्रष्न –8 परिवार निर्माण मे रक्त संबंधो की अनिवार्यता को क्यो हटाया गया ?

उत्तर – इससे क्या कठिनाई है ? आप रक्त सम्बन्धो के आधार पर परिवार बनावें इसमे किसी को आपत्ति नही है तो आपको क्यो आपति है दूसरो पर, यदि बाधक नही है। मेरे विचार मे परिवार बनाने मे आपसी सहमति की अधिक जरूरत है। अतः मैने सहमति को अनिवार्य षर्त माना है।

प्रष्न – 9 इस प्रणाली मे बच्चो को भी परिवार मे सम्पति या परिवार व्यवस्था मे समान अधिकार दे दिया। फिर उनका पिता से कितना संबंध रहा ?

उत्तर – अब तक दो प्रणालियॉ है।

1. पष्चिम के देषो मे जहॉ बच्चे माता पिता के साथ जुड कर रहते है।

2. साम्यवादी देषो की जहॉ बच्चे राष्ट्र के हो जाते है, माता पिता सिर्फ पालन पोषण तक सीमित है । मेरा मत दोनो से अलग है । बच्चे न माता पिता के हो न ही राष्ट्र के, बल्कि वे परिवार के होगे। बच्चे के जन्म लेते ही उसे परिवार के एक सदस्य के रूप मे सभी अधिकार प्राप्त हो जायेगे। माता पिता परिवार की ओर से उनकी व्यवस्था करेगे। व्यक्तिगत पहचान भी परिवार से ही होगी। मां बाप से नही। नहीं तो दुहरा आचरण षुरू हो जाता है जो घातक होता है । अतः बच्चो को परिवार का ही अंग होना चाहिये।

प्रष्न – 10– पति पत्नी की क्या व्यवस्था होगी ?

उत्तर – पति पत्नी की संवैधानिक स्थिति कुछ नही होगी। परिवार की व्यवस्था होगी। परिवार आपस मे किस प्रकार रहता है वह परिवार तय करें। संविधान तो सिर्फ इतना ही ध्यान रखेगा कि किसी व्यक्ति की इच्छा और सहमति के बिना उसे परिवार मे नही रखा जा सकता । इसके बाद परिवार के पारिवारिक मामलो मे संविधान या राज्य का कोई हस्तक्षेप नही होगा।

प्रष्न – 11 –यदि परिवार के सदस्यो मे विवाद होता है या बाहर किसी से झगडा हो तब कैसे निपटेगा?

उत्तर – मैने सुझाव दिया है कि परिवार मे व्यक्ति की कोई स्वतंत्र स्थिति नही होगी। यदि उसके साथ कोई अन्याय परिवार मे होता है तो उसे तब तक परिवार मे निपटाना होगा जब तक वह परिवार छोडने की मानसिकता न बना ले । राज्य के पास जाने के लिय उसे पहले परिवार छोडना होगा क्योकि राज्य इकाइयो को सुरक्षा देगा न कि इकाई के अन्दर हस्तक्षेप करेगा। इसी तरह यदि किसी अन्य परिवार के सदस्य से कोई विवाद होता है तो परिवार का मुखिया ही राज्य के पास जा सकता है व्यक्ति नही। यदि मुखिया तत्काल उपलब्ध नही है और राज्य तक सूचना तत्काल अनिवार्य है तो ऐसी स्थिति प्रमाणित करते हुए व्यक्ति राज्य तक षिकायत कर सकता है जिसे मुखिया पुष्ट करेगा।

प्रष्न 12– परिवार प्रमुख की क्या आवष्यकता है ?

उत्तर – परिवारो मे बुर्जूगो को बिल्कुल किनारे कर देने से उनमे हीन भावना आ रही है। परिवारो मे एक Generation gap बढ रहा है। इस प्रमुख प्रणाली से बुर्जुगो का आत्म सम्मान भी जीवित रहेगा और उनका सीमित नियंत्रण भी परिवार पर रहेगा। मैने यह प्रावधान सत्ता के हस्तान्तरण के विवाद को कम करने के उददेष्य से जोडा है और कुछ नही। मैने प्रमुख के संबंध मे लिखा है कि परिवार का संचालन प्रमुख की जानकारी और नाम से किया जायेगा किन्तु उसमे परिवार प्रमुख का कोई हस्तक्षेप नही होगा। इस तरह मैने परिवार के बुर्जुगो को परिवार व्यवस्था से जोडने का प्रयास किया है।

प्रष्न 13– आपका यह सुझाव यूटोपिया सरीखा है।

उत्तर – वर्तमान जड़ता को समाप्त करने के लिये दिया जाने वाला हर सुझाव यूटोपिया ही होता है। आप दूर से ऐसी बात कह रहे है। यहॉ आने पर आपको व्यावहारिकता का पता चलेगा। मैने जो सुझाव दिये है उनकी व्यावहारिकता का परीक्षण अपने परिवार पर किया है। मै जिस परिवार का सदस्य हूॅ वह एक बडा और संयुक्त परिवार है। भारत मे यह एक मात्र परिवार है जिसमे सम्पति के समान अधिकार का एग्रीमेंट किया हुआ है। महिलाओ को भी सम्पति मे समान अधिकार है । परिवार के सभी सदस्य मिल बैठकर व्यवस्था करते है। परिवार मे आधुनिकता की बीमारी नही है। किन्तु प्राचीन की जडता भी नही है। परिवार के सभी सदस्य संतुष्ट है । परिवार के बाद मैने गांव को भी इकाई के रूप मे विकसित करने का प्रयास किया है जो आप प्रत्यक्ष देख सकते है। मै यह निष्चित रूप से कह सकता हूॅ कि आप जिसे यूटोपिया कहते है वह मेरे परिवार , मेरे षहर, मेरे क्षेत्र के लाभ है तो आपके यथार्थ से अच्छा है। मै चाहता हूॅ कि भारत मे जो कुछ यथार्थ है उसमे परिवर्तन आवष्यक है और उस दृष्टि से मेरा भी एक प्रयोग है जो देखने और विचारने योग्य है।

प्रष्न 14– आपका कथन गले से नीचे नही उतर रहा क्योकि मन मे अनेक शंकाएं है ?

उत्तर – आपके समक्ष चार ही स्थितियॉ हो सकती है–

1. आप वर्तमान स्थिति मे संतुष्ट हों।
2. आप मेरे सुझाव से अधिक उपयुक्त सुझाव दें।
3. आप सुझावो को स्वीकार करें।
4. आप सुधारों को असंभव मानकर चुप बैठ जावे।

यदि आप पहले या चौथे विचार के हो तो विचार–मंथन अनावष्यक है। अन्यथा विचार मंथन का लाभ संभव है। आप कुछ बेहतर सुझाव दे तब तो मै भी आगे संषोधन कर सकता हूॅ क्योकि मेरे विचार न तो अंतिम है न ही आदर्ष । मैने तो वर्तमान से कुछ अच्छी स्थिति के उपाय सुझायें है। संभव है कि आपके सुझाव और अच्छे हो। किन्तु देखा यह जा रहा है कि अधिकांष विद्वान सिर्फ प्रष्न उछालते है। किसी भी अच्छे सुझाव पर प्रष्न खडे हो सकते है । मै चाहता हूॅ कि आप प्रष्न के साथ साथ सुझाव भी भेजे। षंकाए करना अनुचित नही क्योकि षंका ही खोज के मार्ग प्रषस्त करती है। आवष्यक सिर्फ यही है कि षंका का उद्देष्य खोज होना चाहिये। ,

कुछ बांधाए– उपरोक्त विचार मे अनेक बाधाए है–

1. वे लोग जो परंपरावादी है। किसी भी नये विचार मे इन्हे भारतीय संस्कृति पर संकट दिखने लगता है । ये लोग न तो मंथन करते है न ही प्रष्न करते है बल्कि यथा स्थिति के पक्ष मे निर्णायक निष्कर्ष लिख देते है। ये परंपरावादी अपने कथन की पुष्टि के लिये कोई तर्क देने की अपेक्षा अपने कथन के साथ किसी महापुरूष का नाम लिखकर दूसरो का मुंह बन्द करने के आदी है।
2. वे लोग जो निराष है और किसी भी प्रयास की सफलता पर जिन्हे विष्वास नही। ये लोग सिर्फ प्रष्न खडे कर सकते है। इसके आगे कुछ करने को तैयार नही है।
3. वे लोग जो चुनाव शब्द से ही बिदकते है। यद्यपि चुनाव के स्थान पर वे कोई अन्य मार्ग नही सुझा पाते। सर्व सम्मति हमारा पहला प्रयास हो सकता है किन्तु अन्तिम नही क्योकि सर्वसम्मति के गुण दोष दोनो ही है। सर्वसम्मति विवादो को टालती है यह उसका एक लाभ है किन्तु सर्वसम्मति को यदि अधिक दूर तक खीचा जायेगा तो अन्त मे षरीफ आदमी घाटे मे रहेगा, यह उसकी हानि है । सर्वसम्मति के प्रयास प्रायः इच्छा के विरूद्ध थोपने की प्रक्रिया भी बन जाते है । अतः सर्वसम्मति सहमति से ही बननी चाहिये और यदि न संभव हो तो विवादो को टालने की अपेक्षा निपटाने की प्रक्रिया अपनानी चाहिये। चुनाव हमारा अन्तिम विकल्प ही होना चाहिये किन्तु चुनाव एक विकल्प तो है ही।
4. वे जो विचारो से स्पष्ट नही है। ये लोग विवाह, षराब, जुआ, महिला पुरूष का कार्य विभाजन जैसे पारिवारिक कार्यो मे तो षासकीय हस्तक्षेप की मांग करते है जबकि सुरक्षा, न्याय जैसे मुद्दे सरकार से हटाने की बात करते है। वे नही समझते कि वे दुहरी मानसिकता के कारण समस्या पैदा कर रहे है। अन्त मे यही कहना चाहता हूॅ कि वर्तमान अव्यवस्था का एक मात्र हल परिवार व्यवस्था को संवैधानिक स्वरूप प्रदान करना है। मेरे विचार मे परिवार को एक इकाई मान लेना न्याय संगत भी है और व्यवस्था की दृष्टि से भी उचित ।

स्वराज्य व्यवस्था मे ग्राम से राष्ट्र की भूमिका

स्वराज्य का एक अर्थ होता है –प्रत्येक इकाई को अपने इकाईगत निर्णय की स्वतत्रंता। इसके अतरिक्त स्वराज्य की कोई परिभाषा अधूरी ही रहेगी। इस परिभाषा के अनुसार व्यक्ति और समाज दो मूल इकाईया होगी और उनके बीच मे कुछ व्यवस्थागत इकाइया होगी जिन्हे मैने

परिवार, ग्राम, जिला, प्रान्त और राष्ट्र के रूप मे स्वीकार किया है। समाज की कोई व्यवस्था होने तक अस्थायी रूप से राष्ट्र मूल इकाई के रूप मे स्थित है। दूसरी ओर परिवार व्यवस्था की दूसरी इकाई होते हुए भी उनका प्राकृतिक स्वरूप माना जाता है। अतः व्यवस्था की संवैधानिक इकाई के रूप मे पहली इकाई ग्राम को ही माना जाता है। बीच की इकाईयॉ जिला और राष्ट्र प्रान्त व्यवस्था के औचित्य के आधार पर तय की गई है जिन्हे परिवार और राष्ट्र आपस मे मिलकर कम या अधिक कर सकते है।

अंग्रेज षासकों ने बहुत सोच समझकर ग्राम व्यवस्था को समाप्त किया । इसके परिणाम स्वरूप आम नागरिको मे गुलामी की मानसिकता तैयार हुई। ग्राम गणराज्य के स्वाभिमान को समाप्त करके गुलामी की तरह पिछलग्गू बनाने का उनका सबसे कारगर यह उपाय था जिसमे अंग्रेज सफल रहे। स्वतंत्रता के बाद पुनः ग्राम गणराज्य की गौरवषाली परंपरा को स्थापित होना चाहिए था किन्तु सत्ता की भूख ने ऐसा नही होने दिया और भारत मे स्वतंत्रता के पश्चात भी सत्ता केन्द्रित व्यवस्था चलती रही। भारत ने अंग्रेजो की नकल करते हुए स्वराज्य व्यवस्था को न अपनाकर प्रजातंत्र को अपनाया। यह प्रजातंत्र तानाषाही और स्वराज्य के बीच का मार्ग था। स्वराज्य मे इकाईयॉ अपनी इकाईगत व्यवस्था स्वयं करती है और अपनी सीमा से उपरकी व्यवस्था उपर की इकाई को सौंप देती है जबकि अन्य प्रकार के तंत्रो मे उपर की इकाई संपूर्ण व्यवस्था स्वयं करती है तथा नीचे की इकाईयो से समय समय पर व्यवस्था मे सहायता लेती है। तानाषाही और प्रजातंत्र मे सिर्फ इतना ही फर्क है कि तानाषाही मे सर्वोच्च इकाई का चयन व्यक्तियों या परिवारो द्वारा न होकर षक्ति या परंपरा से होता है जबकि प्रजातंत्र मे सर्वोच्च इकाई का चयन आम लोग करते है। इस तरह प्रजातंत्र तानाषाही का एक बहुत ही सुधरा हुआ स्वरूप तो है किन्तु वह स्वराज्य से कोसो दूर है।

ग्राम गणराज्य की व्यवस्था समाप्त होने के अनेक दुष्परिणाम हुए। अंग्रेजो के समय आम लोगो की मानसिकता दासता की थी । साथ ही उसे आम लोगो की कोई सहमति की आवष्यकता भी नही थी किन्तु स्वतंत्रता के बाद आम लोगो की गुलाम मानसिकता मे कमी आई और आम लोगो की सहमति प्राप्त करना भी षासन के लिए आवष्यक हो गया। अतः षासन की सत्ता बनाए रखने के लिये अनेक रास्ते अपनाने पडे जो प्रत्यक्ष रूप से सत्ता के दलालो को आकर्षित कर सके। परिणाम हुआ कि व्यवस्था टूटने लगी। आज भारत मे भ्रष्टाचार और आंतकवाद अपने चरम पर है। जनता से वसूले गये टैक्स का नब्बे प्रतिषत शासन तक भ्रष्टाचार पर खर्च हो रहा है। राजनेता, अधिकारी, पूॅजीपति, पत्रकार और अपराधी पंच प्यारे बनकर समाज का षोषण करने मे लगे है। गांव की योजना दिल्ली मे बनती है। गांव का टैक्स दिल्ली जाता है और दिल्ली से लुट पिटकर गांव मे पहुॅचता है। चारो और व्यवस्था के लिये अव्यवस्था का माहौल है। मेरे विचार मे आज भारत मे व्याप्त सम्पूर्ण अव्यवस्था का मूल कारण ग्राम गणराज्य की व्यवस्था का समाप्त होना ही है अतः हमें ग्राम की व्यवस्था को एक सषक्त और प्रभुता सम्पन्न इकाई के रूप मे स्वीकार करना ही होगा जो व्यक्ति और परिवार की संप्रभुता मे तो हस्तक्षेप नही करेगी किन्तु अपने इकाईगत निर्णय के लिए पूरी तरह स्वतंत्र होगी। इसके लिए मैने नई व्यवस्था का प्रारूप बनाते समय निम्न संषोधन किये हैः–

1. परिवार के बीच सुविधा के लिए ग्राम सभा होगी। एक ग्राम सभा की कुल आबादी न्यूनतम 500 तथा अधिकतम 1500 के बीच होगी। प्रत्येक परिवार का मुखिया ग्राम सभा का सदस्य होगा। ग्राम सभा अपने अधिकार और कर्तब्य स्वयं तय करेगी। ग्राम सभा का निर्णय न्यूनतम 90 प्रतिषत के बहुमत से होगा। ग्राम सभा मे मतदान के समय प्रत्येक सदस्य के उतने मत गिने जायेगे जितनी उनके परिवार की सदस्य संख्या होगी। ग्राम सभा का चुनाव या विघटन कभी नही होगा।
2. प्रत्येक ग्राम सभा अपने बीच से सात लोगो का चुनाव करके एक ग्राम पंचायत बनायेगी। ग्राम पंचायत के अधिकार और कर्तव्य ग्राम सभा तय करेगी।
3. एक सौ ग्राम पंचायतें मिलकर एक जिला सभा बनायेगी। जिला सभा अपने बीच से दस लोगो का चयन करके जिला पंचायत बनायेगी जिसकी कार्यप्रणाली जिला सभा तय करेगी।
4. एक सौ जिला पंचायते मिलकर एक प्रातीय सभा बनाऍगी। जिला पंचायत के सभी सदस्य प्रान्त सभा के सदस्य होगे। प्रान्त सभा अपने बीच से बीस लोगो का चयन करके प्रान्तीय पंचायत का गठन करेगी। प्रान्त सभा अपनी और प्रान्त पंचायत की कार्य प्रणाली अधिकार आदि तय करेगी।
5. एक सौ प्रान्त पंचायतें मिलकर एक संघ सभा बनाऍगी। प्रान्त पंचायत के सभी सदस्य संघ सभा के सदस्य होगे। संघ सभा अपने बीच से पचास लोगो का चयन करके एक संघ पंचायत बनायेगी संघ सभा अपनी और संघ पंचायत की कार्य प्रणाली तय करेगी।

इस तरह पूरे देष मे एक सौ प्रान्त, दस हजार जिले और दस लाख गांव होगे । एक गांव की अनुमानित आबादी एक हजार होगी जो भौगोलिक स्थिति से कम ज्यादा हो सकती है। ष्षहर और वार्ड न होकर जिला और गांव ही होगे। वार्ड का नाम बदलकर गांव हो जाएगा। प्रत्येक परिवार का एक नौ अंको का कोड नम्बर होगा जो उस परिवार की पहचान होगा। यही नम्बर उसका फोन नम्बर , गाडी नम्बर पोस्ट आफिस का नम्बर या बैंक का नम्बर होगा। न्यायालय से समन या केस भी इसी नम्बर पर होगा। इस कोड नम्बर के पहले दो अंक प्रान्त के बाद के दो अंक जिले के, तीसरे दो अंक गांव के तथा अंतिम तीन अंक परिवार की पहचान निष्चित करेंगे। इस संषोधन की दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक सभा अपना अधिकार तय करेगी। उक्त सभा अपने अधिकार तय करने मे पूर्ण स्वतंत्र होगी किन्तु उसके सदस्यो के अधिकार नीचे वाली सभा निष्चित करेगी। इस तरह किसी सभा के अधिकार नीचे की सभा के टकराव पैदा नही करेगें। कोई सरकार या संविधान परिवार से लेकर राष्ट्रसभा (संघ सभा) तक के कार्य या अधिकार या कार्य प्रणाली मे हस्तक्षेप नही कर सकेगे। प्रत्येक सभा स्वयं मे एक स्वतंत्र और सम्प्रभुता सम्पन्न इकाई के रूप मे कार्य करेगी। जिसकी अंतिम सीमा यही होगी कि वह किसी अन्य इकाई की स्वतंत्रता मे हस्तक्षेप न करें। इस प्रकार गांव से राष्ट तक की स्वराज्य व्यवस्था स्थापित हो सकेगी

6. प्रस्तावित संविधान मे यह विलक्षण व्यवस्था भी है कि प्रत्येक सभा या पंचायत की कार्यवाही या संचालन मे प्रत्येक सदस्य की भागीदारी समान होगी। अर्थात किसी सभा या पंचायत का कोई अध्यक्ष नही होगा। सभा की अध्यक्षता केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त कोई अधिकारी करेगा। ऐसा अधिकारी सिर्फ नाम मात्र का अध्यक्ष होगा। उसे न तो मतदान का अधिकार होगा न ही निर्णय को प्रभावित करने का। ऐसा अध्यक्ष सरकार और सभा के बीच समन्वय स्थापित करेगा।

यह संषोधन स्वराज्य प्रणाली और प्रषासन के बीच टकराव टालने के लिए महत्वपूर्ण सिद्ध होगा।

7. प्रस्तावित संविधान मे यह भी प्रावधान है कि कोई भी सभा या पंचायत कोई कर नही लगा सकेगी। आपसी सहमति से षुल्क या आय का कोई माध्यम आरंभ हो सकेगा।

यह प्रावधान इस लिए भी महत्वपूर्ण है कि इससे किसी पंचायत के इस अधिकार पर अंकुष लग जाएगा कि वह बिना अपने सदस्यो को सहमत किये कोई कर लगा दे। यदि उसे धन की आवष्यकता है तो देने वालो की भी सहमति अनिवार्य होगी और यदि कोई कर सबकी सहमति से लगता हे तो वह चंदा, दान फीस या अन्य कुछ भी कहा जा सकेगा, किन्तु कर नही। एक प्रष्न बार बार उठता है कि किसी भी सभा या पंचायत का खर्च बिना कर के कैसे चलेगा ? मेरे विचार मे यह प्रष्न उचित नही है, क्योकि जब अपनी कार्यप्रणाली सभा स्वयं तय करेगी तो अपने व्यय का आंकलन भी स्वयं करेगी और अपने व्यय के अनुसार आय के श्रोत भी स्वयं खोजेगी। जिसे खर्च करना है उसे ही धन इकटठा करना है। इस तरह कर की स्थिति पैदा ही कहा होगी? आज तक दुनिया मे कोई कर ऐसा नही है जिसमें लेने वाला और देने वाला एक ही हो। किसी ग्रुप के लोग यदि अपने खर्च के लिए अपने सदस्यो की सहमति से धन प्राप्त करते है तो उसे कर नही कहा जाता।

प्रश्नोत्तर

प्रष्न 1– वर्तमान समय मे भारत का कोई भी नागरिक देष के किसी भी भाग मे जाकर बसने और व्यापार करने के लिये स्वतंत्र है। प्रस्तावित व्यवस्था मे इस स्वतंत्रता का क्या स्वरूप होगा। क्या उसे ग्राम सभा की स्वीकृति की आवष्यकता होगी ?

उत्तर– वर्तमान समय मे सम्पूर्ण भारत एकमात्र इकाई के रूप मे है और भारत सरकार उस इकाई की व्यवस्थापक। किन्तु नई व्यवस्था मे परिवार एव ग्राम स्वतंत्र इकाइयॉ होगी। अतः भारत सरकार न तो किसी व्यक्ति को कही बसने और व्यापार करने से रोक सकती है न अनुमति ही दे सकती है। भारत सरकार की भूमिका इस संबंध मे षून्य होगी। यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य गांव मे व्यापार करना चाहता है तो उसे ग्राम वासियो की सहमति प्राप्त करनी आवष्यक होगी क्योकि ग्रामवासियो की सहमति बिना उसका रहना, व्यापार करना या अन्य क्रिया कलाप संभव ही नही होगा। ग्राम सभा किसी व्यक्ति या परिवार को अपने गांव मे तो आने और बसने से इस तरह रोक सकती है कि बिना उनकी सहमति के वह न तो जमीन पा सकेगा, न ही पानी की सुविधा । सारे प्राकृतिक संसाधन गांव के है। अतः गांव के साथ सामंजस्य अनिवार्य है। आप पूछ सकते है कि यदि गांव के लोगो को किसी के बसने पर आपत्ति न हो और ग्राम सभा को हो, तब क्या होगा ? प्रष्न इसलिए उठ रहा हे कि आप ग्राम सभा को ग्राम पंचायत समझ रहे है । ग्राम पंचायत को कोई अधिकार नही है बल्कि ग्राम सभा को है और ग्राम सभा उस गांव के प्रत्येक परिवार को मिलाकर बनती है । फिर ग्राम सभा सहमत है कि किसी जिले या देष भर मे ऐसी छूट होनी चाहिए तो वे तय कर सकती है । इस प्रावधान से सिर्फ सरकार की भूमिका षून्य हुई है अन्य की नही।

प्रष्न 2– यदि ग्राम सभा का कोई निर्णय सर्व सम्मति से न हो तब क्या होगा ?

उत्तर– इसके लिये ग्राम सभा अपनी कार्य प्रणाली स्वयं तय करेगी। फिर भी प्रारंभिक व्यवस्था मे यह प्रतिषत 90 का रखा गया है। ग्राम सभा चाहे तो 90 प्रतिषत शासन के बहुमत से इस प्रतिषत को घटा बढा सकती है।

प्रष्न 3– ग्राम सभा और जिला सभा अपने अपने अधिकार स्वय निष्चित करेगी। यह कैसे सभंव है कि दो भिन्न भिन्न इकाइयॉ अपने अपने अधिकारो की सीमा स्वयं तय करें ?

उत्तर – इसमें क्या दिक्कत है। प्रत्येक बडी इकाई नीचे वाली इकाई के लोगो को ही मिलाकर बनती है तथा उसके पास उतने ही अधिकार होते है जो नीचे वाली इकाई उन्हे देती है। परिवार के किसी सदस्य को कितना भी धन खर्च करने की स्वतत्रंता हो किन्तु उसके पास धन उतना ही आ सकता है जितना कि उसके परिवार वाले उसे दें। इसमे टकराव कहॉ है ? उस व्यक्ति की स्वतंत्रता की अधिकतम सीमा वही होगी, जो नीचे वाली इकाइयॉ उसे सौपती है इससे अधिक नही। उस सीमा मे उसे निर्णय करने की पूरी स्वतंत्रता है। यदि ग्राम पंचायते जिला सभा को कोई अधिकार नही देती है तो जिला सभा का अस्तित्व ही कागजो तक रह जाएगा।

प्रष्न 4– सडक, पानी, नदी, आदि पर ग्राम सभा का अधिकार होगा या संघ सभा का ?

उत्तर– ग्राम सभा बैठकर तय करेगी तय करेगी कि क्या क्या उसे अपने पास रखना है और क्या क्या जिला सभा को देना है। इसी तरह उपर बढते बढते अधिकार और दायित्व संघ सभा तक पहुंच सकेगे।

प्रष्न 5– नये संविधान के लागू होते ही अफरा– तफरी मच जाएगी ?

उत्तर – इस बात पर भी बहुत विचार हुआ। संविधान के लागू होते ही रेल, डाक, सडक, स्कूल, स्वास्थ्य आदि सभी विभाग अलग अलग निगमो के रूप मे काम करना षूरू कर देगें जिन पर संघ सभा का नियत्रण होगा। किसी ग्राम सभा ने तय किया कि उसका स्कूल वह स्वयं चलाएगी, तो संघ सभा उसे छोड देगी। कोई प्रांतीय सभा मांग करे कि अपने प्रान्त के डाक घर की व्यवस्था संघ सभा उसे दे दे, तो संघ सभा उसे इस तरह सौप देगी कि उससे किसी अन्य प्रांत की स्वतंत्रता मे बाधा न हो । अफरा तफरी हो भी सकती है , जिसका हल खोजना कठिन नही। फिर भी यदि स्वतंत्रता संभव नही है तो अन्य विकल्पो पर भी मै सोचने को तैयार हूॅ। आप सुझाव दें।

प्रष्न 6– ग्राम सभा से राष्ट सभा तक की बैठको की अध्यक्षता कोई षासकीय अधिकारी करेगा, यह बिल्कुल अनुचित है ?

उत्तर– वर्तमान समय मे अध्यक्ष षब्द का अर्थ एक षक्तिषाली इकाई के रूप मे लिया जाता है। किन्तु अध्यक्ष को अधिकार विहीन कर दिया जाय तो आपत्ति क्यो उठनी चाहिए? समान स्थिति के लोगो मे से कोई अध्यक्ष हो, इससे अच्छा है कि कोई अध्यक्ष न हो और सब लोग समान रहें। ग्राम सभा की बैठक मे एक षासकीय प्रतिनिधि भी रहना चाहिए जो षासन और सभा के बीच संवाद रखेगा । ग्राम सभा और षासन के बीच टकराव के दो ही कारण है–

1. वर्तमान व्यवस्था जिसमें षासन और उसके प्रतिनिधियो का हस्तक्षेप, अधिकार और मनोबल बहुत अधिक उॅचा है और ग्राम सभा का नीचा है।

आपके अनुसार इसमे ग्राम सभा का अधिकार हस्तक्षेप और मनोबल बहुत उंचा होगा और षासन या उसके प्रतिनिधि का नीचा।

मेरे विचार मे दोनो स्थितिया घातक है। दूसरी स्थिति बहुत आकर्षक है और लुभावनी है किन्तु दूसरी स्थिति से उत्पन्न अव्यवस्था पहली स्थिति के बनने मे सहायक है। अतः क्यो न पहली स्थिति से बचने के लिये हम दूसरी स्थिति से समझौता कर लें। कोई अधिकारी अपने को अध्यक्ष समझ कर बैठक मे रहे किन्तु उसका कोई अधिकार न हो तो क्या नुकसान है ? यदि षब्दो से व्यूरो क्रेसी का मनोबल तोडना मात्र अपका उदेदष्य हो तो पृथक बात है अन्यथा मै नही समझता कि उससे कोई अन्तर आ जाएगां अपने बीच मे चुने गये अध्यक्ष की भूमिका षक्तिहीन षासकीय कर्मचारी की भूमिका से अधिक विवादास्पद और हानिकर होगी।

प्रष्न 7– यदि किसी गांव के लोग अपनी गांव की प्रगति के लिए धन एकत्रित करने मे समर्थ न हो तब वहा की व्यवस्था कैसे होगी ?

उत्तर – भारत के प्रत्येक नागरिक को एक निष्चित राषि केन्द्र सरकार देगी ही । यह राषि वर्तमान आकलन के अनुसार दो हजार रूपया प्रतिव्यक्ति प्रति वर्ष होगी। इससे अधिक के लिए वह व्यक्ति अपनी व्यवस्था स्वय करेगां और कोई नही कर सकेगा। तो वह व्यक्ति या परिवार षासकीय अधिकार मे अपनी संपूर्ण संपति निहित करके उस पर अपना भरण पोषण आश्रित कर लगगा। कोई गांव किसी अन्य गांव की आय पर अपना दावा नही कर सकता बल्कि सभी गांव अपनी –अपनी व्यवस्था अपने ही साधनो से करने को मजबूर होंगे। अपनी –अपनी व्यवस्था स्वयं देखने की स्थिति से कमजोर लोग तबाह हो जायेगे यह तर्क उन परजीवियो के द्वारा बार–बार उठाया जाता है जो श्रमजीवियो के श्रम का षोषण करके स्वयं को जीवित रखना चाहते है। भारतीय संस्कृति स्वयं मे इतनी प्राणवान है कि वह किसी अन्य को भूखा रहने ही नही देगी। फिर षासकीय परिवार की भी व्यवस्था संविधान मे रखी ही गई है।

बाधाएं है 1 – सबसे पहली बाधा वे लोग है जो रामराज्य और स्वराज्य के बीच का भेद ही नही समझ पा रहे । ये लोग नाम तो ग्राम स्वराज्य का लेते है किन्तु इनकी कल्पना रामराज्य की है । ये लोग स्वराज्य ग्राम की जगह पर आदर्ष ग्राम बनाना चाहते है। सच्चाई यह है कि यदि ग्राम स्वराज्य हो तो रामराज्य अपने आप होगा किन्तु यदि रामराज्य होगा तो स्वराज्य की गारंटी नही होगी। ग्राम स्वराज्य की कल्पना का साकार करने मे लगे अधिकांष लोग षराब बंदी, स्वदेंषी स्वावलंबन, खादी, षिक्षा आदि न जाने कितनी उपदेषात्मक षर्ते ग्राम स्वराज्य के साथ व्यर्थ मे जोडकर ग्राम स्वराज्य का अर्थ उसी तरह विकृत कर देते है , जिस प्रकार वर्तमान भारतीय संविधान मे धाराओ मे मूल अर्थो मे किन्तु परन्तु लगाकर किया गया है। मेरे विचार मे ग्राम स्वराज्य की बिल्कुल साफ और दो टूक परिभाषा विनोबा जी ने दी है– ग्राम सभा को किसी भी सीमा तक गलती करने

तक की स्वतंत्रता। इस परिभाषा मे कही स्वावलंबन, षराबबंदी, गोहत्या बंदी , विदेषी वस्त्र बंदी जैसी षर्ते नही है। हमें सबसे पहले स्पष्ट करना है कि हम पहले स्वराज्य चाहते है कि सुराज्य अर्थात हम प्रत्येक इकाई को निर्णय की स्वतंत्रता देना चाहते है या गांवो को अपनी सर्वोदयी सोच का उपदेष। ये दोनो बाते एक साथ चल ही नही सकेगी।

2. दूसरी बाधा उन सबकी है जो बिल्लियो के बीच बन्दर की भूमिका मे रहकर सदा अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते है। इन्हे स्वराज्य के विषय मे न कुछ सोचना है, न ही कुछ करना है । इन्हें तो सिर्फ प्रष्न खडे करके इस मुददे को लटकाए रखना है । इस संबंध मे हमे गांधी जी के आधार पर दो टूक षब्दो मे कहना होगा कि पहले तुम तो हटो, तुम्हारे बाद हमारा क्या होगा यह हम सोचेगे। ऐसी स्पष्ट घोषणा ही ऐसे परजीवियो के प्रष्नो का उत्तर होगी क्योकि न समझने मे ही जिसका स्वार्थ है उसे हम कभी नही समझा सकेंगे।

3. तीसरी बाधा वे है जो पंचायती राज्य को ही स्वराज्य मानकर संतुष्ट है। पंचायती राज्य व्यवस्था की बढती आवाज को दबाकर अपना षडयंत्र जारी रखने का एक प्रयास मात्र है। ऐसे ही लोगो ने आन्ध्र और हरियाणा सरकार द्वारा षराब बंदी स्वीकार कराकर अपनी सफलता के बडे बडे दावे दिये थे। हमे पूर्ण स्वराज्य से कम कही समझौता नही करना है। यह अलग बात है कि सरकार जितना दे उसे हम लेते चले जावे। हम सरकार के प्रयासो के विरोधी नही है किन्तु अपने लक्ष्य को भ्रमित होने देना भी उचित नही है।

4. चौथी बाधा वे है जो ग्राम स्वराज्य के लिए संविधान मे संषोधन की आवष्यकता ही नही समझते । सच्चाई यह है कि संविधान का निर्माण राम राज्य या सुराज्य की इच्छा से प्रेरित होकर सम्पन्न हुआ था। स्वराज्य का वर्तमान संविधान से कोई लेना देना नही है । इस संविधान मे संषोधन के बिना कोई स्वराज्य आ ही नही सकता यह मेरा स्पष्ट मत है।

अंत मे मै कहना चाहता हूँ कि ग्राम स्वराज्य ही रामराज्य या सुराज्य का आधार है और हमे इस दिषा मे पूरा प्रयास करना चाहिए।

अपराध और नियंत्रण

जबसे यह सृष्टि बनी है तभी से अपराध भी पैदा हुए। प्रारम्भ से ही मानव प्रवृति तीन प्रकार की रही हैः–

1. सामाजिक अर्थात समाज सहयोगी
2. असामाजिक अर्थात आत्म केन्द्रित
3. समाज विरोधी अर्थात अपराधी

अब तक के करोडों वर्ष के इतिहास मे कभी ऐसे काल की कल्पना नही की जा सकती जब इन तीन वर्गो का अस्तित्व न रहा हों अर्थात अपराध और अपराधी प्रकृति मे सास्वत् है। न तो कभी अपराधी समाप्त हुए और न ही कभी अपराध नियंत्रक। यह अलग बात है कि समय समय पर इनकी संख्या और षक्ति कम या अधिक होती है।

अपराध षब्द की चार प्रकार की परिभाषाए अब तक प्रचलित है–

1. व्यक्ति के मौलिक अधिकारो का उल्लंघन अपराध है। मेरे विचार मे मूल अधिकार चार ही है– 1 जीने का 2 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का 3 संपति का 4 स्व निर्णय का

2. प्रत्येक इकाई के इकाईगत निर्णय की स्वतंत्रता मे बाधा ही अपराध है। व्यक्ति और समाज मूल इकाइयॉ होने से अपराधो का स्वरूप स्थिर तथा अन्य व्यवस्था की इकाइयॉ होने से अपराधो का स्वरूप अस्थिर होता है।

3. सरकार के कानूनो का उल्लंघन ही अपराध है चाहे वे कानून समाज के नियमो के अनुकूल हो या प्रतिकूल। ये कानून अस्थिर होते है अतः अपराधो का स्वरूप भी बदलता रहता है।

4. स्वयं प्रचलित दीर्घकालिन नियम पालन से प्रतिबद्ध व्यक्तियो के समूह को समाज कहते है तथा समाज के नियमो के विरूद्ध आचरण ही अपराध है। ये नियम लगभग स्थिर होते है।

क्रमांक दो छोडकर शेष तीन परिभाषाए समाज मे व्यापक रूप से प्रचलित है ये तीनो एक दूसरे से संबद्ध भी है और पृथक भी। प्राचीन समय मे चारो परिभाषाए एक साथ जुडी थी। समाज ने व्यक्ति के मूल अधिकारो का उल्लंघन ही अपराध माना था। अतः समाज द्वारा उतने ही कार्यो को नियम के रूप मे स्वीकार किया गया था। सरकार कभी भी समाज का प्रतिनिधित्व नही करती थी बल्कि सरकार समाज के नियमो के कार्यान्वयन तक सीमित थी। इस तरह सरकार कोई मूल भूत नियम नही बना सकती थी बल्कि उसके कानून समाज द्वारा स्वीकृत नियमो के आधार पर ही थे। अतः सरकार के कानूनो का उल्लंघन ही अपराध था। चौथी बात यह भी थी कि सरकार या समाज किसी इकाई के इकाईगत निर्णय के अधिकारो मे कोई कटौती नही कर सकते थे । व्यक्ति परिवार गांव तथा राष्ट अपने अपने निर्णय करने के लिये स्वतंत्र थे । सरकार का एक सूत्रीय कार्य था सुरक्षा। सरकार समाज विरोधी तत्वो पर नियंत्रण का कार्य करती थी। सरकार कभी असामाजिक लोगो पर न तो नियंत्रण का कार्य करती थी न ही इस संबंध मे कोई कानून ही बनाती थी।सरकार सुरक्षा और न्याय को छोडकर जनहित के कोई कार्य अपने हाथ मे नही लेती थी।

धीरे धीरे समय बदला और राज्य समाज पर मजबूत होने लगा। सुरक्षा के साथ साथ जन कल्याण के कार्यो मे राजकीय हस्तक्षेप षुरू हुआ। राज्य ने समाज का प्रतिनिधित्व करना षुरू किया । धीरे धीरे आज यह स्थिति बनी कि समाज का स्वरूप ही नही रहा। राज्य ने ही समाज का स्थान ग्रहण कर लिया। समाज का स्वरूप ही नही रहा। राज्य ने ही समाज का स्थान ग्रहण कर लिया। समाज की पहले की परिभाषा स्वय विकसित दीर्घकालिक नियम पालन से प्रतिबद्ध व्यक्तियो का समूह बदलकर समाज धर्म जाति राष्ट्र, संस्कृति के साथ जुड गया । विडम्बना ही है कि समाज की सम्पूर्ण परिभाषा और मान्यता ही बदल गई तथा समाज विरोधी लोग भी समाज के अंग माने जाने लगे। धीरे धीरे मूल अधिकारो की परिभाषा भी बदल गयी जो सरकार के दायित्व घोषित किये जाये के साथ हो गयी। षिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार आदि को भी मूल अधिकार मे षामिल करने की आवाजे उठने लगी। समाज का अर्थ सरकार हो जाने से तथा सरकार का जनकल्याणकारी स्वरूप स्थापित होने से सरकार को व्यक्ति, परिवार ,गांव, जिला आदि इकाइयों के इकाइगत जीवन में हस्तक्षेप के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। इस प्रकार अपराध षब्द की सिर्फ एक ही परिभाषा बची रही कि सरकार के कानूनों का उल्लंघन ही अपराध है। समाज की व्यवस्था छिन्न भिन्न होने से चौथी परिभाषा कमजोर हो गई। मूल अधिकार की परिभाषा बदलने से पहली परिभाषा समाप्त हो गई तथा सरकार द्वारा अपने आस पास सम्पूर्ण अधिकार केन्द्रित कर लेने से दूसरी परिभाषा भी समाप्त हो गई। यदि हम वर्तमान स्थिति का आंकलन करे तो आज पहली और चौथी परिभाषा के अनुसार भारत मे कुल आबादी का दो प्रतिषत ही अपराधी है शेष मे से 97 प्रतिषत के करीब असामाजिक तथा एक दो प्रतिषत सामाजिक लोग है । यदि हम तीसरी परिभाषा के आधार पर आकलन करें तो पूरे भारत मे 99 प्रतिषत लोग अपराधी और 1/2 प्रतिषत लोग ही षायद सामजिक हो। यदि हम दूसरी परिभाषा के आधार पर आकलन करे तो पूरे भारत मे सबसे बडी अपराधी तो सरकार है जो व्यक्ति से लेकर प्रान्तीय इकाई तक के इकाईगत जीवन मे असीमित हस्तक्षेप करती है। 2 प्रतिषत अपराधियो का क्रम सरकार के बाद आता है। इस तरह भारत मे अपराध नियंत्रण मे सबसे बडी बाधा अपराध की परिभाषा का बदल जाना ही है । अपराध की वर्तमान परिभाषा तभी उचित हो सकती थी जब सरकरा समाज का दर्पण होती और सरकार के अन्दर समाज का प्रतिबिम्ब दिखता । यह तो विपरीत होता चला गया अर्थात सरकार मुख्य हो गई और समाज दर्पण । समाज मे सरकार का प्रतिबिम्ब दिखने लगा है।

मेरे विचार मे अपराध की सरकारी परिभाषा क्रमांक तीन बिल्कुल गलत है। तथा समाज की परिभाषा क्रमांक चार भी समाज का कोई ढॉचो न होने से अनुपयुक्त है। दो परिभाषाएं उचित हो सकती है– मूल भूत अधिकारो का उल्लंघन क्रमाक एक तथा दूसरी इकाई के इकाइगत निर्णय मे बाधा क्रमांक दो वाली। वैसे ये दोनो परिभाषाऍ एक दूसरे से जुडी हुई है। इन दोनो मे से पहली परिभाषा स्वीकार करे तो मूलभूल अधिकारो की वर्तमान परिभाषा को बदलना होगा तथा दूसरी पहर भाषा स्वीकार करे तो संविधान संषोधन द्वारा इकाईयो को स्वतंत्रता देनी होगी। फिर भी यदि दूसरी परिभाषा को मान्य कर लिया जाय तो पहली का स्वय ही उसमें समावेष हो जायेगा। इस तरह वर्तमान समय मे अपराध षब्द की इस तरह की परिभाषा होनी चाहिये–'' किसी भी इकाई के मूल अधिकारो का उल्लंघन''। इस परिभाषा के अनुसार अपराध पांच प्रकार के होगे–

1. चोरी, डकैती, लूट
2. बलात्कार
3. आंतक, गुण्डागर्दी, दादागिरी, किसी इकाई के स्वः निर्णय मे हस्तक्षेप
4. धोखा, जालसाजी, मिलावट, कमतोलना
5. भ्रष्टाचार

इन पांच के अतिरिक्त कोई भी कार्य अपराध नही है। भले ही वे कार्य सामाजिक दृष्टि से अनैतिक हो या षासकीय दृष्टि से गैर कानूनी। हम वर्तमान समय मे उन्हे अनैतिक और गैर कानूनी तो कह सकते है किन्तु अपराध नही। वर्तमान स्थिति का हम आंकलन करे तो पिछले पचास वर्षो मे भारत मे इन सभी अपराधों मे भारी वृद्धि हुई। इनमे से एक भी अपराध ऐसा नही जिसमे लेष मात्र भी कमी हुई हो। हमने चाहे अन्य सभी दिषाओ मे कितनी भी प्रगति कर ली हो किन्तु अपराधों के आधार पर तो यह सर्वमान्य है कि हम बहुत पीछे चले गये है, लगातार पीछे जा रहे है, तथा भविष्य मे भी इस क्रम मे बदलाव की कोइ आषा नही। सरकारो के बदलने, मोरारजी, अटल जी, विष्वनाथ प्रताप सिंह जी सरीखे योग्य और ईमानदार व्यक्तियो को सत्ता सौंपने , एक परिवार का षासन हटाने य मजबूत सरकार की जगह कमजोर सरकार का प्रयोग भी अपराध नियंत्रण मे विफल रहा। भारत के इतिहास मे पहली बार विष्वनाथ प्रताप जी ने उत्तर प्रदेष का मुख्यमंत्री बनते समय डकैती उन्मूलन को अपनी प्रतिष्ठा का प्रष्न बनाया था। कुछ ही महिनो मे श्री विष्वनाथ प्रताप सिंह पराजित हुए । उन्हे अपने भाई की जान तथा मुंख्यमंत्री पद दोनो ही छोडना पडा। जब श्री सिह प्रधान मंत्री बने तो उन्होने वही घिसा पिटा गरीबी उन्मूलन जातीय पिछडापन दूर करने अषिक्षा दूर करने जैसे ऐसे काम हाथ मे लिये जिनमे कोई खतरा न हो। अटल बिहारी बाजपेयी जैसा योग्य प्रधान मंत्री भी अपराधो के विरूद्ध जेहाद छेडने से डरता है । हमने देखा है कि डाप्सी बिमारी का फैलाव मिलावट से हुआ किन्तु मिलावट के विरूद्ध कदम न उठाकर सरसों के विरूद्ध कदम उठाना पडा क्योकि मिलावट एक अपराध है और अपराधी के विरूद्ध एक भी कदम किसी भी सरकार या व्यक्ति के लिये खतरनाक हो सकता है।

जो व्यवस्था लालू, मूलायम, मायावती, जयललिता, के सहारे ही चल रही हो जिसकी सवोच्च इकाई रूपी संसद मे अनेक नामी अपराधी सम्मानपूर्वक बैठते हो, जिसके अधिकांष निर्णयो मे दादागिरी की महत्वपूर्ण भूमिका रहती हो उस व्यवस्था से ऐसे परिणामो के अतिरिक्त कुछ और आषा करना आत्म छलावा मात्र ही है।

मैने प्रारम्भ मे ही लिखा है कि किसी भी सरकार का एक और सिर्फ एक ही दायित्व होता है अपराध नियंत्रण। अर्थात प्रत्येक इकाई को अपने मूल अधिकारो की सुरक्षा की गारंटी। इनके अतिरिक्त सरकार कोई अन्य काम हाथ मे लेती है तो यही माना जायेगा कि उसने अपराध नियंत्रण मे सफलता पा ली है और अपने दायित्वो से आगे बढकर वह काम कर रही है अथवा वह अपराध नियंत्रण मे असफल है और अपने दायित्व से मुंह चुराकर जनकल्याण का ढोंग लोगो को धोखा देने के लिए कर रही है। वर्तमान व्यवस्था और उसके द्वारा स्थापित सरकार अपने दायित्वों मे असफलता को ढकने के लिये ढोंग कर रही है। बलात्कार पर नियंत्रण मे असफल व्यवस्था वेष्यावृति पर रोक लगाने का कानून बनाती है। मिलावट और कम तौलना भले ही आम बात हो गई हो किन्तु मूल्य नियंत्रण का नाटक अवष्य होगा। पूरे देष मे आतंक एक महामारी का रूप ग्रहण कर चुका है किन्तु सरकार बाल मजदूरी तथा साक्षरता जैसे कामो मे लगी हुई है। मुझे तो ऐसी कुव्यवस्था को व्यवस्था या सरकार कहने मे भी षर्म आती है। जब यही सब करना था तो अपने को सरकार कहने की क्या आवष्यकता थी। कोई आश्रम नाम रखने से ही काम चल सकता था। कुल मिलाकर हम यही कह सकते है कि सरकार अपने दायित्वो के अतिरिक्त अन्य सभी कार्यो मे सचेष्ट , सक्रिय और सफल है। अतः ऐसी सरकार या ऐसी व्यवस्था से अपराध नियंत्रण की उम्मीद करना व्यर्थ है।

अपराध नियंत्रण का अर्थ है प्रत्येक इकाई के मूल अधिकारो की सुरक्षा और सरकार का अर्थ है ऐसी सुरक्षा की गारंटी। नई व्यवस्था मे सरकार का ऐसी गारंटी देना दायित्व होगा। इसके लिये हमें सम्पूर्ण व्यवस्था का ही नया ढांचा खडा करना होगा और इसके लिये भारतीय संविधान मे निम्नलिखित व्यापक संषोधन करने होगें।

1. मूल अधिकारो को परिभाषित करना होगा।
2. व्यक्ति और समाज दो मौलिक इकाइयॉ है। बीच की इकाइयों, परिवार ग्राम, जिला प्रान्त और राष्ट की संवैधानिक रचना करनी होगी।
3. प्रत्येक इकाई के मूल अधिकार और अधिकतम अधिकारों की सीमा बनानी होगी।
4. सरकार को जनहित के कार्यो से पृथक करके उसे सिर्फ अपराध नियंत्रण तक केन्द्रित करना होगा।

इन सबके बाद ही अपराध नियंत्रण का मार्ग निकल सकेगा। इस ढाचा मे हम अपराध नियंत्रण के उदेष्य मे एक महत्वपूर्ण संषोधन और करेगे कि यदि किसी जिले के कलेक्टर, एस. पी. और जिला न्यायाधीष तीनो महसूस करते हो कि उस जिले मे अपराधियो के भय से लोग रिपोर्ट करने या साक्ष्य देने मे डरते है तो वे उक्त जिले मे आंतरिक आपात्काल धोषित कर सकते है। ऐसे आपात्काल धोषित जिले मे धोषित अल्पकाल तक गुप्त मुकदमा– प्रणाली षुरू की जायेगी। इसके अन्तर्गत पुलिस की गुप्तचर सेवा जिला न्यायाधीष के समक्ष गुप्त मुकदमा प्रस्तुत करेगी जिसकी जांच जिला की गुप्तचर न्यायिक सेवा द्वारा गुप्त रूप से की जायेगी। यदि अपराध प्रमाणित होगा तो जिला न्यायालय सजा की सिफारिष करेगा। तदनुसार उक्त व्यक्ति की गिरफतारी के बाद उच्च न्यायालय की गुप्तचर सेवा जांच करके सजा पर अपना निर्णय देगी। इस तरह अपराध नियंत्रण बहुत आसान हो जायेगा तथा सरकार के टाडा मीसा या अन्य तानाषाही अधिकार भी समाप्त हो जायगें। बिना न्यायालय के आदेष के कोई भी व्यक्ति किसी गुप्त मुकदे मे गिरफतार नही किया जा सकेगा।

मेरा तो यहां तक प्रस्ताव है कि यदि किसी इकाई मे मूल अधिकारो की सुरक्षा मे षासन असफल रहता है तो षासन उस व्यक्ति परिवार या गांव को उतना मुआवजा देने हेतु बाध्य होगा जितना न्यायालय निष्चित करे। यदि हम इस प्रकार के संषोधन संविधान मे कर दे तो समाज से अपराधो की वृद्धि पर ही नही बल्कि वर्तमान स्थिति को भी काफी हद तक नियंत्रण मे किया जा सकता है।

अपराध नियंत्रण के इस लक्ष्य को प्राप्त करने मे अनेक बाधाएं भी है।

1. वे लोग जो सुराज्य के पक्षधर है, स्वराज्य के नही, ऐसे लोगो की सत्ताकांक्षा के कारण ही नित नये कानून बनते है। ऐसे अनावष्यक कानूनो की अधिकता एक ओर तो उसी मात्रा मे भ्रष्टाचार के अवसर पैदा करती है दूसरी और सरकार पर इतना अनावष्यक दायित्व डाल देती है कि सरकार की अपराध नियंत्रण की षक्ति क्षीण हो जाती है।

2. वे लोग जो अनैतिक और अपराध का अन्तर नहीं समझते । ऐसे लोग सब काम सरकार से ही कराना चाहते है । ये लोग षराब, जुआ, वेष्यावृत्ति, पर्यावरण सुरक्षा आदि कार्यो मे प्रतिदिन शासकीय हस्तक्षेप की मांग करते है। ये लोग समाज को कभी किसी काम मे सक्रिय होने ही नही देते। समाज के हर काम के लिये सरकार से मांग करना इनकी आदत है।

3. वे लोग जो अपराध नियंत्रण मे षासकीय हस्तक्षेप के विरूद्ध है। ये लोग अपराध नियंत्रण के लिये ह्रदय परिवर्तन को ही मात्र आधार मानते है जबकि सच्चाई यह है कि ह्रदय परिवर्तन अपराध नियंत्रण का पहला आधार है, अन्तिम नही। सर्वोदय से जुडे लोग विषेष रूप से ऐसा विचार रखते है । किन्तु मै अब तक नही समझ सका कि ये लोग चोरी, डकैती, हत्या, आतंक आदि आदि के लिये तो ह्रदय परिवर्तन को आवष्यक मानते है किन्तु अष्लील, साहित्य, शराब, गांजा, छूआछूत बालश्रम, आदि को कानून से रोकना चाहते है। मेरे विचार मे बिल्कुल उल्टी सोच है।

4. वे लोग जो व्यक्ति सुधार को एक मार्ग समझते है। वे भूल जाते है कि जब तक व्यवस्था ठीक रहती है तभी शराफत का लाभ समाज को मिलता है । अन्यथा शराफत धूर्तो का भोजन होती है। धूर्तता या अपराध नियंत्रण के लिये शराफत पर अंकुष लगाकर समझदार बनना होगा। जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय अधिकांष अच्छे लोगों ने व्यवस्था संभाली। उनकी शराफत पर किसी को संदेह नही। किन्तु परिणाम विपरीत इसलिये हुए कि धूर्तो को अव्यवस्था के काल मे शराफत प्रधान लोागे की ही आवष्यकता है। मै स्पष्ट देख रहा हूँ कि आज राजनैतिक दलो या धार्मिक सामाजिक संस्थाओ के मठाधीष बन बनकर धूर्त लोग लगातार समाज मे शराफत , नैतिकता और व्यक्ति चरित्र सुधार का संदेष दे रहे है, तथा शरीफ लोग, ऐसे लोगो के चंगुल मे फंस फंसकर उनकी सहायता कर रहे है। मै इस विषय मे दृढ मत का हूँ कि शराफत को मजबूत करने के लिये वर्तमान व्यवस्था का ऐसा स्वरूप बनना होगा जो धूर्तो और अपराधियों को व्यवस्था का लाभ न लेन दे।

5. वे लोग जो ग्राम स्वराज्य का अर्थ ग्राम सरकार समझते है। ऐसे लोग गांव को व्यवस्था की एकमात्र इकाई कहते है। न उससे उपर कोई सरकार होगी न नीचे इनसे जब यह प्रष्न होता है कि गांव का बहुमत यदि अल्पमत पर अत्याचार करने लगे तो उसे कैसे रोकेंगे? अथवा यदि कोई परिवार गांव के निर्णय को गलत समझता है तो कहां अपील करे? ऐसे प्रष्नो का बिना किसी तर्क कुछ भी उत्तर देकर टाल देते हैं । ये लोग न तो परिवार को इकाई मानते है न ही व्यक्ति को जबकि विनोबा जी के अनुसार गांव के किसी भी निर्णय मे प्रत्येक परिवार की सहमति आवष्यक है। अर्थात विनोबा जी ने व्यक्ति और परिवार के व्यक्तिगत और पारिवारिक मामलो मे गांव को बिना उनकी सहमति के हस्तक्षेप से रोका है। मैरे विचार मे सुरक्षा की गारंटी उच्चतम इकाई ही दे सकती है। सच तो यह है कि सुरक्षा की गारंटी हेतु एक विष्व सरकार बननी चाहिये थी किन्तु जब तक विष्व सरकार नही बनती तब तक राष्ट्रीय सरकार को ही यह दायित्व संभालना चाहिये।

कुछ स्वाभाविक प्रष्न

प्रष्न' 1– यदि न्याय और सुरक्षा का दायित्व गांव को ही सौप दे तो क्या हर्ज है।

उत्तर– गांव को अपने गांव की सुरक्षा और न्याय का अधिकार है कि दायित्व नही । यदि कोई गांव अपने गांव के लोगों को संतुष्ट और सहमत करे तो राष्ट्रीय सरकार को क्या दिक्कत है? किन्तु यदि कोई गांव सुरक्षा और न्याय नही दे पाता तो ऐसे किसी परिवार या व्यक्ति की षिकायत समाज अर्थात सरकार तो सुनेगी ही। प्रत्येक इकाई को इकाइगत स्वतंत्रता की गारंटी सरकार देगी। अर्थात गांव एक बीच की इकाइ है न नीचे से उपर , न उपर से नीचे । अतः गांव को अन्तिम इकाई मानना अव्यावहारिक है।

प्रष्न–2 – यदि शराफत का प्रचार किया जाये और सब लोग शरीफ हो जाय तो हर्ज क्या है?

उत्तर– सिर्फ एक दिन के लिये पुलिस और कोर्ट को निष्क्रिय करके अपने शराफत के बल पर अपराध रोकने की कल्पना मात्र भी हास्यास्पद तर्क है।

अतः शराफत के बल पर अपराध नियंत्रण इक्का दुक्का ही संभव है।

प्रष्न 3– तो क्या गांधी जी का अंहिंसा का सिद्धान्त गलत था?

उत्तर– गांधी जी ने अंहिसा को प्रतिरोधों का माध्यम बनाया था न कि अपराधियो को छूट देने की वकालत की थी। गांधी जी तो अन्तिम दम तक अपने अधिकारो के लिये अहिंसक संघर्ष हेतु प्रेरित करते रहे। पता नही आप किस तरह गांधी जी का नाम लेकर कह रहे है कि हम सिर्फ अपने सुधरने तक स्वयं को सीमित कर लें। हम सुधरेंगे जग सुधरेगा का मंत्र ठीक व्यवस्था हो तब तो उपयुक्त अन्यथा कायरता का प्रतीक और समस्याओं की जड है।

प्रष्न 4– प्रत्येक इकाई अपनी सुरक्षा स्वयं करे तो इसमें आपत्ति क्या है?

उत्तर– कोई भी इकाई अपनी सुरक्षा स्वयं करें यह ठीक है किन्तु टकराव की अनुमति नही दी जा सकती है। वर्तमान समय मे किसी विष्व व्यवस्था के अभाव मे राष्ट्रो को यह अधिकार प्राप्त है। उसका परिणाम है युद्ध । इस राष्ट्रीय अधिकार पर विष्व व्यवस्था का अंकुष आवष्यक है। यदि ऐसी व्यवस्था रही होती तो शायद राष्ट्रो को इतनी शक्ति अपनी सुरक्षा पर नही लगती । अतः किन्ही भी इकाइयों को अपनी सुरक्षा की चिन्ता स्वयं करने की स्थिति अव्यवस्था पैदा करेगी। अतः सर्वोच्च व्यवस्था का यह दायित्व है कि प्रत्येक इकाई को सुरक्षा की गारंटी दे।

प्रष्न5– आपने अपराध नियंत्रण के लिये गुप्त मुकदमा प्रणाली का सुक्षाव दिया। यह तो पूरी तरह अप्रजातांत्रिक प्रक्रिया होगी। जिस व्यक्ति को सजा मिल रही है उसे अपनी सफाई का अवसर न मिले यह उचित नही। इस प्रक्रिया से भ्रष्टाचार और तानाषाही भी बढ सकती है। कलेक्टर, एस. पी. और डी. जे. को ऐसे असीमित अधिकार देना उचित नहीं?

उत्तर– अपराध नियंत्रण हमारा लक्ष्य है और प्रजातंत्र उसका मार्ग । प्रत्येक नागरिक को सुरक्षा देना समाज का दायित्व है। इस दायित्व की पूर्ति प्रजातांत्रिक तरीके से ही होनी उचित है। किन्तु यदि किन्ही परिस्थितियों मे प्रजातंत्र ही अपराधियों का कवच बन जाये तो प्रजातंत्र रूपी ऐसे कवच को भेद कर भी अपराध नियंत्रण का दायित्व तो पूरा करना ही होगा। आज पूरे देष मे अपराधी तत्वो का बोलबाला है। आतंक, बलात्कार मिलावट, जालसाजी, भ्रष्टाचार आदि अनियंत्रित हो गये है । यदि सरकार या समाज आम नागरिकों की इन मुटठी भी अपराधियों से सुरक्षा करने मे समर्थ नही है तो इसे प्रजातंत्र की सफलता कहना कितना न्यायसंगत होगा? प्रजातंत्र का तो अर्थ है आम नागरिको को अधिकतम न्याय। अतः प्रजातंत्र की सुरक्षा के लि अपराधियो के प्रजातांत्रिक अधिकारो की सुरक्षा के लिय हम अधिक भावुक हो जाते है किन्तु आम नागरिको के वैसे ही अधिकारो पर हम विचार नही करते है।

आज भारत के किसी अपराधी को गैर कानूनी तरीके से पुलिस गोली मार दे तो आम लोग प्रसन्न होते है। हम प्रायः पुलिस से अपेक्षा करते है कि वह जुर्म की खोजबीन के क्रम मे संदेही की पिटाई करे। किसी अपराधी को थाने या पुलिस की अपेक्षा स्वयं पीटना भीड़ को अधिक उचित दिखने लगा है। आम लोगो के मन मे ऐसे गैर कानूनी कार्यो के प्रति आर्कषक इसलिये है कि उनका पुलिस और न्यायालय द्वारा अपराधियो की सजा पर से विष्वास उठ गया है। किसी संभावित अराजकता को ढालने के लिये अपराध नियंत्रण करना ही होगा और यदि अनिवार्य होगा। तो

प्रजातंत्र का दूरूपयोग करने वालों पर भी नियंत्रण के उपाय करने होंगे। गुप्त मुकदमा प्रणाली अपराध नियंत्रण का एक अचूक नुस्खा है जो प्रजातंत्र की भी सुरक्षा करेगा भले ही उसके कारण अपराधियो का प्रजातंत्र का कवच टूट ही क्यो न जाय।

गुप्त मुकदमा प्रणाली मे नयायालय की ही भूमिका महत्वपूर्ण है। एस. पी. कलेक्टर और जिलाधीष तो सिर्फ परिस्थितियों के आकलन तक सीमित है। बाद मे इनकी नगण्य है। सम्पूर्ण भूमिका गुप्तचर पुलिस और गुप्तचर पुलिस की है। अतः आपकी चिन्ता बेबुनियाद है। संभव है कि देष के किसी बडे नेता या कलेक्टर को ही इस प्रणाली मे सजा हो जाय और उसे पता न चले । व्यक्ति को बिना न्यायालय से अपराध सिद्ध हुए गिरफतारी नही होगी। और सजा की पुष्टि उच्च न्यायालय करेगा। इतनी सतकर्ता रखी गई है । आप सोचिये कि मीसा, टाडा आन्तरिक सुरक्षा कानूनों की अपेक्षा यह कितना अधिक प्रजातांत्रिक है? यदि गुप्त मुकदमा प्रणाली के बाद सरकार और पुलिस के विषेष कानून हट जाते है तो खुषी होनी चाहिये।

फिर भी आप ठीक नही समझतें तो कृपया लिखिये कि अपराध नियंत्रण के लिये और क्या मार्ग उचित है? अब आपकी सलाह तो निरर्थक है कि चाहे अपराध भले ही बढे किन्तु गुप्त मुकदमा प्रणाली अप्रजातांत्रिक है। यदि आप इस प्रणाली को ठीक नही समझते तो एक जिम्मेदार विचारक के नाते अपने संषोधन और सुझाव भेजे जो गुप्त मुकदमा प्रणाली से अधिक उपयुक्त कारगर और प्रजातांत्रिक सिद्ध हो।